3-2

॥ श्रीः ॥

शिवस्वरोदय

(शिव-पार्वती-संवाद)

स्वरप्रभा भाषाटीका सहितः ।

अनुवादक-

पं० हरेकृष्ण शास्त्री दातार

महाघाट वाराणसी ।

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, कचौड़ीगली,

वाराणसी ।

बम्बई प्रेस में छपा ।

मूल्य २)

श्रीः

शिवस्वरोदय

(शिव-पार्वती-संवाद)

स्वर प्रभा भाषाटीका सहितः ।

अनुवादक—

पं० हरेकृष्ण शास्त्री दातार

ब्रह्माघाट, वाराणसी ।

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,

राजादरवाजा, ब्रान्च—कचौड़ीगली

वाराणसी ।

बम्बई प्रेस, में छपा

मूल्य २)

शिवस्वरोदय की विषयानुक्रमणिका:—

प्रास्ताविक दो शब्द ।

मानवमात्रको सर्वविध सुख एवं आत्मतुष्टि सम्पन्न होने की दृष्टि से कुछ विशिष्ट भावनाएँ एवं कार्यों की नितान्त आवश्यकता होती है। उसके सभी कार्य केवल औपचारिक अथवा व्यावहारिक नहीं होते। उसे मानसिक शान्ति एवं चित्त-सन्तोष के लिये आवश्यक निजी साधनाकी थोड़े बहुत रूपमें आवश्यकता होती है। उक्त साधना एकही नहीं अपितु विभिन्न प्रकार की हो सकती है। अर्थात् मानव जीवन में आध्यात्मिक मानसिक एवं नैतिक उत्थान का और चित्तसन्तोषपूर्ण सर्वविध सुखमयता का अस्तित्व अनिवार्य है, इसमें सन्देह नहीं।

इस दृष्टि से मानव को वास्तविक मानव बनाने के लिये संसार में सर्व प्रथम भारतवर्ष में प्रयत्न हुए ऐसा यदि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वेदान्त, सांख्य, योग, धर्मशास्त्र, न्याय, मिमांसा, पुराण आदि का निर्माण कर समस्त संसार के सम्मुख जीवन को अधिक से अधिक रूप में उन्नत एवं बौद्धिक शक्तिशाली बनाकर एक आदर्श स्थापित किया है। उन शास्त्रों के अतिरिक्त ज्यौतिषशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, स्वरशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों एवं विद्याओं का प्रादुर्भाव होकर उनके द्वारा भारतीय जीवन व्यावहारिकता को लेते हुए आध्यात्मिकता की ओर सुगमता से अग्रसर हो सका। किन्तु मध्यकाल में परकीय विचारधाराओं के प्रभाव के कारण भारतियों को अपनी विद्याओं की ओर देखने की दृष्टि कुछ विकृत होकर उनके अध्ययन, विकास आदि के दृष्टि

से हमारे प्रयत्न अपूर्ण हुए। परिणाम यह हुआ कि अनेक भारतीय विद्याएँ लुप्त हुईं एवं कुछ अविकसित रूप में आज भी विद्यमान हैं।

इन्हीं कुछ विद्याओं में से एक स्वर-शास्त्र है ऐसा यदि कहा जाय तो वह अवास्तविक न होगा। इस शास्त्र के बहुत ही कम ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। अन्य विद्याओं की तुलना में तो ये नहीं के बराबर हैं। फिर भी जो कुछ है, उनमें यह शिव-स्वरोदय मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथ के सर्वांगीण अध्ययन के अनन्तर हमें यह सुलभता से ज्ञात हो सकता है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से योगी, ज्योतिषियों एवं सर्वसाधारण के लिये उपयुक्त पुस्तकों में इस पुस्तक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा व्यावहारिक छोटे से छोटे कार्यों की सफलता के साथ साथ योगसिद्धि, अमरता, तत्त्व-साक्षात्कार आदि कठिन एवं गूढ़ बातों की सत्यता सिद्ध हुई और हो सकती है। बहुत ही कम संख्या में इस शास्त्र के मर्मज्ञ योगी आज भी विद्यमान हैं। किन्तु इतनी छोटी संख्या से इस शास्त्र का विकास जितना आवश्यक था न हो सका और न हो भी सकता है। इसलिये समाज के बुद्धिप्रधान वर्ग का ध्यान जबतक इस ओर आकृष्ट न होगा और वे इस शास्त्र को विकसित बनाने की दृष्टि से प्रयत्नशील न होंगे तबतक यह आशा करना व्यर्थ है कि हमारे इस अमूल्य विद्या का पुनरुद्धार एवं विकास हो सकेगा। संभव है कि इस शास्त्र के सिद्धान्त प्रात्यक्षिक प्रयोगों की कसौटी पर सत्य सिद्ध होकर हमारे जीवन की कुछ कठिन समस्याओं को सुलभता से हल

कर सकें। यह भी संभव है कि हमारा सामाजिक जीवन इस शास्त्र के ज्ञान के द्वारा सर्वविध सुखमयता की ओर प्रतगति से अग्रसर हो सके। तात्पर्य यह कि भारतीय समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट होकर भारतीयों के अन्य भारतीय विद्याओं के साथ-साथ विद्या का अध्ययन समयानुरूप विकास आदि के दृष्टि से प्रयत्न आरम्भ हो तो निकट भविष्य में भारतीय समाज आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करने में अवश्य ही समर्थ हो सकेगा।

सर्वसाधारण लोगों को भी ज्ञात होने में यह ग्रंथ सुलभ हो इसलिये यथाशक्ति सरल शब्दों में इसकी भाषा टीका की गयी है। यद्यपि इसकी संस्कृत टीकाएँ हैं, किन्तु उनके द्वारा संस्कृत भाषा न जानने वालों को लाभ न हो सकने के कारण एवं सर्व साधारण लोगों में इस शास्त्र के ज्ञान का प्रसार हो इसलिये प्रकृत प्रयत्न किया गया है। कहीं-कहीं मूल ग्रन्थ अत्यन्त क्लिष्ट होने के कारण संभव है कि भाषा में भाव पूर्ण रूप से न उतरे हों। अतः विद्वान् पाठक अपनी योग्यता के द्वारा उक्त त्रुटियों को सुधार कर अपने नीर-क्षीर विवेक का परिचय देंगे ऐसी आशा है। यदि आज स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्र भारतीय दृष्टि से इस भारतीय शास्त्र का प्रचार होकर इसको विकसित एवं परिवर्धित करने के प्रयत्न होंगे तो मेरे ये स्वल्प प्रयत्न सफल होकर एवं निकट भविष्य में भारतीय विद्याओं का क्षेत्र अधिक विस्तृत होकर भारतीय सामाजिक जीवन एवं इसी प्रकार मानव जीवन भी बौद्धिक उन्नति के साथ सर्वविध वैभवसंपन्न भी हो सकेगा। विनयावनत—

ब्रह्माघाट, काशी

हरेकृष्ण शास्त्री दातार

|| श्री साम्बसदाशिवाय नमः ||

|| अथ श्री शिवस्वरोदयः ||

अथ मङ्गलाचरणम् ।

महेश्वरं नमस्कृत्य शैलजां गणनायकम् ।
गुरुं च परमात्मानं भजे संसारतारणम् ॥१॥

श्री शंकरजी, पार्वतीजी, तथा गणेशजी को प्रणाम कर इस अनित्य विश्वसे उद्धार करने वाले गुरु एवं परमात्मा का मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥

देवी उवाच—

देवदेव महादेव कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व मम प्रभो ॥२॥

पार्वतीजी ने कहा—हे देवों के देव महादेव! सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त करा देने वाले श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश आप मुझको कृपा करके कीजिये ॥ २ ॥

कथं ब्रह्माण्डमुत्पन्नं कथं वा परिवर्त्तते ।
कथं विलीयते देव वद ब्रह्माण्डनिर्णयम् ॥३॥

हे देवाधिदेव! यह संसार किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका परिवर्तन क्यों होता है? एवं इसका विलय अर्थात् नाश किस प्रकार होता है? इस संसार का वास्तविक स्वरूप एवं महत्व आप कहिये ॥ ३ ॥

शिव उवाच—

तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्त्तते ।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद्ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥४॥

महादेवजी ने कहा—हे देवि ! यह संसार तत्त्वों से उत्पन्न हुआ है और उन तत्त्वों के द्वारा ही इसका परिवर्तन, पालन एवं उन्हीं में नाश भी होता है। इस प्रकार इस संसार के विषय में निर्णय उक्त तत्त्वों के द्वारा ही होता है ॥ ४ ॥

देवी उवाच—

तत्त्वमेव परं मूलं निश्चितं तत्त्ववादिभिः ।
तत्त्वस्वरूपं ाक देव ! तत्त्वमेव प्रकाशय ॥५॥

पार्वतीजी ने कहा—हे महेशजी ! ज्ञानी तत्त्ववादियों ने जिनको तत्त्वों का स्वरूप यथार्थतः ज्ञात है, निश्चित किया है कि इस संसार के मूल तत्त्व ही हैं। अतः उन तत्त्वों का स्वरूप क्या है। इसको कहिये और उस तत्त्व को प्रकाशित भी कीजिये ॥५॥

शिव उवाच—

निरंजनो निराकार एको देवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाद्वायुसंभवः ॥६॥

महादेवजी ने कहा—कि जो एक निर्विकार नित्य एवं आकार रहित परमात्मा है उससे आकाश की उत्पत्ति हुई और आकाश से वायु की ॥ ६ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततः पृथ्वीसमुद्भवः ।
एतानि पञ्च तत्त्वानि विस्तीर्णानि च पञ्चधा ॥७॥

वायु से तेज (अग्नि) की उत्पत्ति हुई और तेज से जल की एवं जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई इस प्रकार ये पाँचो तत्त्व विभिन्न पाँच प्रकार से इस संसार में फैले हैं ॥ ७ ॥

ताभ्यां ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तैरेव परिवर्त्तते ।
विलीयते च तत्रैव तत्रैव रमते पुनः ॥८॥

उक्त पञ्चतत्त्वों के द्वारा ही यह संसार निर्मित हुआ है, उन्हीं तत्त्वोंके द्वारा इसका पालन एवं उन्हीं में इसका विलय (नाश) भी होता है। उन्हीं पञ्चतत्त्वों में ही फिर यह रमता है ॥८॥

पंचतत्त्वमये देहे पंच तत्त्वानि सुन्दरि ! ।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः ॥९॥

हे सुन्दरि ! उक्त पञ्चतत्त्वों से बने हुए एवं पञ्चतत्त्वों से परिपूर्ण इस शरीर में सूक्ष्म रूपसे पाँचो तत्त्व विद्यमान हैं। उन सूक्ष्म तत्त्वोंको तत्त्वज्ञ योगी ही जानते हैं ॥ ९ ॥

अथ स्वरं प्रवक्ष्यामि शरीरस्थस्वरोदयम् ।
हंसचारस्वरूपेण भवेज्ज्ञानं त्रिकालजम् ॥१०॥

अब शरीर में स्थित अकारादि स्वरोंके उच्चारण में कारण जो मुख्य स्वर हैं, उनको हम कहते हैं। उक्त स्वरों के ज्ञान के द्वारा "हंस चार" अर्थात् श्वास को लेते समय "सः" और श्वासको छोड़ते समय 'अहं' इस प्रकारका उच्चारण होकर उससे भूत, भविष्य और वर्तमान काल का भी ज्ञान होता है ॥१०॥

गुह्याद्गुह्यतरं सारमुपकारप्रकाशनम् ।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तकं मणिः ॥११॥

गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य ऐसे सार (ज्ञान) एवं लाभ (उपकार) को प्रकट करनेवाला स्वरोदयका ज्ञान सभी ज्ञानों में श्रेष्ठ है ॥११॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं सुबोधं सत्यप्रत्ययम् ।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारं त्वास्तिकेजने॥१२॥

यह स्वरोदय का ज्ञान यद्यपि सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, फिर भी यह जानने में सुलभ और सत्य का ज्ञान कराने वाला है। यह नास्तिकों के लिये आश्चर्य की वस्तु है और आस्तिकों को सहायता देने वाला है ॥ १२ ॥

शिष्यलक्षणम्—

शान्ते शुद्धे सदाचारे गुरुभक्त्यैकमानसे ।
दृढचित्ते कृतज्ञे च देयं चैव स्वरोदयम् ॥१३॥

शिष्य का लक्षण:—शान्त, शुद्ध, सदाचारी, गुरुका भक्त, दृढचित्त और उपकारों को माननेवाले (कृतज्ञ) शिष्य को ही इस स्वरोदय का ज्ञान देना चाहिये ॥ १३ ॥

दुष्टे च दुर्जने क्रुद्धे नास्तिके गुरुतल्पगे ।
हीनसत्त्वे दुराचारे स्वरज्ञानं न दीयते ॥१४॥

दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, गुरु-पत्नीगामी, शौर्यहीन दुराचारी और मूर्ख शिष्य को इस स्वर का ज्ञान कभी न देना चाहिये ॥ १४ ॥

शृणु त्वं कथितं देवि ! देहस्थं ज्ञानमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥१५॥

हे देवि ! तुम शरीर में रहनेवाले इस उत्तम ज्ञानको सुनो जिसे अब मैं कहता हूँ। इस ज्ञानको प्राप्त करने से सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, अर्थात् मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥१५

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम्।
स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥१६॥

इस स्वर में ही सम्पूर्ण वेद है। इसी में शास्त्र भी अन्तर्भूत हैं। इसी प्रकार संगीत विद्या भी इसी में विद्यमान है। इतना ही नहीं सम्पूर्ण त्रैलोक्य भी इसी स्वर में है और स्वर आत्म-स्वरूप ही है॥ १६॥

स्वरहीनश्च दैवज्ञो नाथहीनं यथा गृहम्।
शास्त्रहीनं यथा वक्त्रं शिरोहीनं च यद्वपुः ॥१७॥

इस स्वरज्ञान से विहीन ज्योतिषी उसी प्रकार अपूर्ण-विद्वान् होता है जिस प्रकार मालिक के बिना घर, शास्त्रविहीन मुख और मस्तकरहित शरीर होता है। अर्थात् ज्योतिषी को स्वरज्ञान की बहुत आवश्यकता होती है॥ १७॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च।
सुषुम्नामिश्रभेदं च यो जानाति स मुक्तिगः ॥१८॥

नाडियों के भेद, प्राणतत्वों के भेद तथा पिंगला, इडा, सुषुम्ना आदि नाडियों का मिश्रभेद जो जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है॥ १८॥

साकारे वा निराकारे शुभं वायुबलात्कृते।
कथयन्ति शुभं केचित् स्वरज्ञानं वरानने ! ॥१९॥

हे सुन्दरि ! साकार अथवा निराकार शुभ वायु के बल से कुछ लोग स्वर का ज्ञान प्राप्त करना शुभ कहते हैं॥ १९॥

ब्रह्माण्डखण्डपिण्डाद्याः स्वरेणैव हि निर्मिताः।
सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥२०॥

इस स्वर के ही द्वारा यह ब्रह्माण्ड एवम् उसके अंश और पिण्ड (देह) उत्पन्न हुए हैं। इतना ही नहीं संसार की सृष्टि और संहार को करने वाला स्वर ही साक्षात् शिवरूप भी है ॥२०॥

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम्।
स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं नवा दृष्टं न वा श्रुतम् ॥२१॥

स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ कोई गुप्त वस्तु, स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ धन संपत्ति और स्वर ज्ञान से उत्तम ज्ञान भी न देखा गया है न सुना ही गया है ॥२१॥

शत्रुं हन्यात्स्वरबले तथा मित्रसमागमः।
लक्ष्मीप्राप्तिः स्वरबले कीर्तिः स्वरबले सुखम् ॥२२॥

शत्रुओं का नाश स्वर के बल से होता है। इसी प्रकार स्वर बल के द्वारा मित्रों की प्राप्ति, संपति की प्राप्ति, यश का लाभ और सुख की प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

कन्याप्राप्तिः स्वरबले स्वरतो राजदर्शनम्।
स्वरेण देवतासिद्धिः स्वरेण क्षितिपो वशः ॥२३॥

स्वर बल के द्वारा सन्तति की प्राप्ति होती है। स्वर बल से ही राजा का दर्शन होता है। इसी तरह स्वर बल से देवता प्रसन्न होते हैं और राजा भी वश में हो जाता है ॥ २३ ॥

स्वरेण गम्यते देशो भोज्यं स्वरबले तथा।
लघुदीर्घं स्वरबले मलं चैव निवारयेत् ॥२४॥

स्वर की प्रबलता के आधार पर अन्य देशों में गमना करना चाहिये। स्वर बल में ही अच्छी प्रकार भोजन भी करना चाहिये और मलमूत्र का त्याग करना चाहिये ॥२४॥

सर्वशास्त्रपुराणादि स्मृतिवेदाङ्गपूर्वकम् ।
स्वरज्ञानात्परं तत्त्वं नास्ति किंचिद्वरानने ॥२५॥

हे सुमुखि ! सभी दर्शन, शास्त्र, अठारह-पुराण, सम्पूर्ण स्मृतियाँ और वेदों के अङ्ग स्वर रूप ही हैं। स्वर से श्रेष्ठ तत्व कोई नहीं है ॥ २५ ॥

नामरूपादिकः सर्वो मिथ्या सर्वेषु विभ्रमः ।
अज्ञानमोहिता मूढा यावत्तत्त्वं न विद्यते ॥२६॥

इस स्वर रूप महान् तत्व का ज्ञान जबतक मूढ़ लोगों को नहीं होता, तबतक इन लोगों का नाम और रूप आदि में असत्य ज्ञान या भ्रम होता है और ये अज्ञान से सर्वथा मोहित रहते हैं ॥ २६ ॥

इदं स्वरोदयं शास्त्रं सर्वशास्त्रोत्तमोत्तमम् ।
आत्मघटप्रकाशार्थं प्रदीपकालकोपमम् ॥२७॥

सम्पूर्ण शास्त्रों में श्रेष्ठ यह स्वरोदय शास्त्र है, आत्मा को प्रकाशित करनेवाला यह एक महादीपक ही है ॥ २७ ॥

यस्मै कस्मै परस्मै वा न प्रोक्तं प्रश्नहेतवे ।
तस्मादेतत्स्वयं ज्ञेयमात्मनो वाऽत्मनाऽऽत्मनि॥२८॥

चाहे जिस किसी को इस शास्त्र का ज्ञान न देना चाहिये।

इस शास्त्र का ज्ञान अपने चित्त, वाणी और बुद्धि में ही रखना चाहिये ॥ २८ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो ग्रहदेवताः।
न च विष्टिव्यतीपातो वैधृत्याद्यास्तथैव च ॥२९॥

तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति आदि योगोंसे स्वर बल से होनेवाले शुभफल का नाश नहीं होता ॥२९॥

कुयोगो नास्तिको देवि! भविता वा कदाचन।
प्राप्ते स्वरबले शुद्धे सर्वमेव शुभं फलम् ॥३०॥

हे देवि! शुद्ध स्वर का बल प्राप्त होनेपर सभी शुभ फल प्राप्त हो जाते हैं। इस स्वर शास्त्र में किसी भी प्रकार का बुरा योग न था, न है और न कभी होगा ही ॥ ३० ॥

देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तराः।
ज्ञातव्याश्च बुधैर्नित्यं स्वदेहज्ञानहेतवः ॥३१॥

पंडितों को अपने शरीर में फैली हुई अनेकरूप की नाड़ियों को अपने शरीर के ज्ञान के लिये अवश्य जानना चाहिये ॥३१॥

नाभिस्थानगस्कंधोर्ध्वमंकुरादेव निर्गताः।
द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥३२॥

नाभिस्थाम से लेकर कन्धे तक जो मेरुदण्ड या अंकुर है, उसके आसपास शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ होती हैं ॥३२॥

नाडीस्था कुंडली शक्तिर्भुजंगाकारशायिनी।
ततो दशोर्ध्वगानाड्योदशैवाधः प्रतिष्ठिताः ॥३३॥

नाभि में रहनेवाले कुण्डली चक्र के ऊपर दस और नीचे भी दस नाडियाँ होती हैं। कुण्डली चक्र का स्वरूप सर्प की कुण्डली की तरह है ॥ ३३ ॥

द्वे द्वे तिर्यग्गते नाड्यश्चतुर्विंशति संख्यया।
प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः ॥३४॥

चौबीस नाड़ियों की संख्या में नाड़ियों के दो समूह तिरछे गये हैं। उनमें दस नाडियाँ प्रधान हैं, अन्य दस नाड़ियाँ वायु को वहन करनेवाली हैं ॥ ३४ ॥

तिर्यगूर्ध्वास्तथा नाड्यो वायुदेहसमन्विताः।
चक्रवत्संस्थिता देहे सर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥३५॥

ऊपर, नीचे तथा तिरछी नाड़ियाँ वायु और शरीर की आधार हैं। वे नाड़ियाँ चक्र की तरह इस शरीर में रहती हैं और वे प्राण पर ही आश्रित हैं ॥ ३५ ॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः।
इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥३६॥

पहले कही हुई नाड़ियों में दस प्रधान नाड़ियाँ हैं। उन दस नाड़ियों में भी तीन उत्तम हैं। इनका नाम इडा, पिंगला और सुषुम्ना है ॥ ३६ ॥

गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।
अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी तथा ॥३७॥

उक्त तीनों नाड़ियों से भिन्न गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा,

यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी इस प्रकार सात (३ मिलाकर दस) नाड़ियाँ (प्रधान) हैं ॥ ३७ ॥

इडा वामे स्थिता भागे पिंगला दक्षिणे स्मृता ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गांधारी वामचक्षुषि ॥ ३८ ॥

शरीर में बायीं ओर इडा नाड़ी विद्यमान है। इसी प्रकार पिंगला दाहिनी ओर, सुषुम्ना बीच में और गांधारी बायीं आँख में, स्थित है ॥ ३८ ॥

दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वाम कर्णे आनने चाप्यलंबुषा ॥३९॥

दाहिनी आँख में हस्तिजिह्वा नामक नाड़ी रहती है। पूषा दक्षिण कान में, यशस्विनी बाएँ कान में और मुख में अलंबुषा नामक नाड़ी स्थित है ॥ ३९ ॥

कुहूश्च लिंगदेशे तु मूलस्थाने तु शंखिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दशनाडिकाः ॥४०॥

कुहू नामक नाड़ी लिङ्ग देश में रहती है और शंखिनी गुदास्थान में स्थित है। इस तरह देह के दस द्वारों के आधार से उक्त दस नाड़ियाँ रहती हैं ॥ ४० ॥

इडा पिंगला सुषुम्ना च प्राणमार्गे समाश्रिताः ।
एता हि दशनाड्यस्तु देहमध्ये व्यवस्थिताः ॥४१॥

इडा, पिंगला और सुषुम्ना प्राण के मार्ग पर स्थित हैं। पहले कही गयी ये दस नाड़ियाँ शरीर में विद्यमान हैं ॥४१॥

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यहम् ।
प्राणोऽपानःसमानश्च उदान व्यान एव च ॥४२॥

मुख्य नाड़ियों के नाम पहले ही कहे जा चुके हैं अब वायुओं के नाम कहता हूँ । प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान ये पाँच मुख्य वायु हैं ॥ ४२ ॥

नागःकूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।
हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमंडले ॥४३॥

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच उप-प्राण हैं । हृदय में प्राण नामक वायु रहता है । गुदस्थान में अपान वायु रहता है ॥ ४३ ॥

समानो नाभिदेशे तु उदानः कंठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानो दश वायवः ॥४४॥

नाभि देश में समान नामक वायु रहता है और कंठ के मध्य में उदान वायु रहता है । सम्पूर्ण शरीर में व्यान नामक वायु फैला है । इस प्रकार ये दस वायु प्रधान हैं ॥ ४४ ॥

प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ॥४५॥

प्राण आदि पाँच वायुओं के स्थान पहले कहे जा चुके हैं। अब नाग आदि पाँच वायुओं के स्थान कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकलो क्षुतकृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥४६॥

डकार के वायु को नाग कहा गया है। जिस वायु के द्वारा नेत्रों के पलक खुलते एवं बन्द होते हैं, उसको कूर्म कहा जाता है। छींक में कारण कृकल वायु है। जँभाई का कारण देवदत्त वायु है॥ ४६॥

न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।
एते नाडीषु सर्वासु भ्रमते जीवरूपिणः॥४७॥

धनंजय नामक वायु सारे शरीर में व्याप्त है। इसीलिये मृत शरीर को भी नहीं त्यागता है। उक्त दस वायु शरीर की सा नाड़ियों में जीवरूप धारणकर भ्रमण करते हैं॥ ४७॥

प्रकटं प्राणसंचारं लक्षयेद्देहमध्यतः।
इडापिंगलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिर्बुधः॥४८॥

शरीर के बीचमें प्राण वायु की गति स्पष्ट प्रतीत होती उसे विद्वान् इडा पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा जानें॥४८॥

इडा वामे च विज्ञेया पिंगला दक्षिणे स्मृता।
इडानाडीस्थिता वामे ततो व्यस्ता च पिंगला॥४९॥

शरीर के दक्षिण भाग में पिंगला और वामभागमें इडा रह है इडा बायें फेरे से और पिंगला दाहिने फेरे से रहती है॥४९॥

इडायां तु स्थितश्चन्द्रः पिंगलायां च भास्करः।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसस्वरूपतः॥५०॥

इडा नाडी में चन्द्रमा और पिंगला में सूर्य रहता सुषुम्ना में शिव हंसरूप से रहते हैं। इसलिये सुषुम्ना शिवस्वरूप ही कहा गया है॥ ५०॥

हकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारेण प्रवेशनम् ।
हकारः शिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते ॥५१॥

श्वास लेते समय 'स' कार का और श्वास छोड़ते समय 'ह' कार का उच्चारण होता है। हकार शिव रूप और सकार शक्ति रूप कहा गया है ॥ ५१ ॥

शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः ।
दक्षनाडी प्रवाहश्च शम्भुरूपो दिवाकरः ॥५२॥

बायीं नाड़ी का परिचालक चन्द्र शक्तिरूप से स्थित है। इसी प्रकार दाहिनी नाड़ी को प्रवाहित करनेवाला सूर्य शंकर रूप में रहते हैं ॥ ५२ ॥

श्वासे सकारसंस्थे तु यद्दानं दीयते बुधैः ।
तद्दानं जीवलोकेऽस्मिन्कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥५३॥

विद्वान् लोगों द्वारा सकार युक्त बायें स्वर में जो दान दिया जाता है, उससे इस मर्त्य लोक में कोटि गुणित फल प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

अनेन लक्षयेद्योगी चैकचित्तः समाहितः ।
सर्वमेवं विजानीयान्मार्गे वै चन्द्रसूर्ययोः ॥५४॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त और शान्त होकर योगी को देखना चाहिये और सभी पदार्थों को सूर्य और चन्द्र के अर्थात् पिंगला और इडाके मार्ग में देखना चाहिये ॥ ५४ ॥

ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरे जीवे अस्थिरे न कदाचन ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥५५॥

मनुष्यको स्थिर होकर इस तत्वका ध्यान करना चाहिये । अस्थिर होकर कभी ध्यान न करे । ऐसा करने से स्थिर मनुष्य को इष्ट की सिद्धि, बहुत लाभ और विजय प्राप्त होता है ॥५५॥

चन्द्रसूर्यसमभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः ।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत् ॥५६॥

जो लोग चन्द्र (इडा) और सूर्य (पिंगला) का नियम-पूर्वक अभ्यास सर्वदा करते हैं, उनको भविष्य और भूतकाल का ज्ञान सहजही प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

वामे चामृतरूपा स्याज्जगदाप्यायनं परम् ।
दक्षिणे चरभागेन जगदुत्पादयेत्सदा ॥५७॥

शरीर में बायीं ओर रहनेवाली इडानाड़ी अमृत रूप होने के कारण वह संसारको पुष्ट करने वाली होती है । दक्षिण भाग में रहने वाली पिंगलानाड़ी से सदा संसार कीं उत्पत्ति की जाती है ॥ ५७ ॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वत्र कर्मसु ।
सर्वत्र शुभकार्येषु वामा भवति सिद्धिदा ॥५८॥

शरीरके मध्य भागमें रहने वाली सुषुम्ना नाड़ी सब कार्यों के लिये क्रूर, दुष्ट अर्थात् विघातक है । सभी शुभ कार्योंमें बायीं नाडी (इडा) सिद्धि प्राप्त करा देने वाली है ॥ ५८ ॥

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा ॥५९॥

बाहर जाते समय बायीं नाडी (इडा) शुभ होती है। लौटते या प्रवेश करते समय दाहिनी (पिंगला) शुभ कही गयी है। चन्द्रमाको सदा सम और सूर्य को विषम जानना चाहिये ॥५६॥

चंद्रः स्त्री पुरुषः सूर्यश्चन्द्रो गौरोऽसितो रविः।
चन्द्रनाडीप्रवाहेण सौम्यकार्याणि कारयेत् ॥६०॥

चन्द्रनाडी (इडा) को स्त्री और सूर्य नाडी (पिंगला) को पुरुष माना गया है। चन्द्र नाड़ी का रंग सफेद और सूर्य नाडी का वर्ण काला है। इसलिये चन्द्रनाडी के प्रवाह के समयही शुभ कार्यों को करना अच्छा होता है ॥ ६० ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेण रौद्रकर्माणि कारयेत्।
सुषुम्नायाः प्रवाहेण भुक्तिमुक्तिफलानि च ॥६१॥

सूर्यनाडी (पिंगला) के प्रवाह के समय क्रूरकार्यों को करना चाहिये। सुषुम्ना नाडी के प्रवाह के समय भोग और मोक्ष दायक कार्य करना अच्छा है ॥ ६१ ॥

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करो हि सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणित्रीणि कृतोदये ॥६२॥

महीने के शुक्ल पक्षमें प्रतिपदासे तीन दिन तक पहले चन्द्रस्वर (बायाँ) का और तीन दिन के हिसाब से आगे सूर्य स्वर का उदय होता है। इसके विपरीत कृष्ण पक्षमें पहले तीन दिनों में सूर्य स्वर (दाहिना) का उदय और बाद में चन्द्र स्वर का उदय होता है ॥ ६२ ॥

सार्धद्विघटिके ज्ञेयः शुक्ले कृष्णे शशी रविः ।
वहत्येकदिनेनैव यथा षष्टिघटीः क्रमात् ॥६३॥

शुक्लपक्षमें सूर्योदय से लेकर अढ़ाई घड़ी तक चन्द्र स्वर का उदय होता है; कृष्ण पक्षमें उसी प्रकार पहले अढ़ाई घड़ी तक सूर्य स्वर का उदय होता है। एकही दिनमें उक्त प्रकार से अढ़ाई घड़ी के हिसाब से चन्द्र और सूर्यस्वर चलते हैं ॥६३॥

वहेयुस्तद्घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत् ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुर्विपरीतो विवर्जयेत् ॥६४॥

उन घड़ियों के बीचमें पाँचतत्व प्रवाहित होते हैं। पहले कहे गये नियमके अनुसार चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर प्रवाहित हो तो कार्यों को प्रारम्भ करे और विपरीत प्रवाह में कार्यों को प्रारम्भ न करें ॥ ६४ ॥

शुक्लपक्षे भवेद्वामा कृष्णपक्षे च दक्षिणा ।
जानीयात्प्रतिपत्पूर्वं योगी तद्गतमानसः ॥६५॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को आरंभ बायीं नाडी (इडा) के और कृष्णपक्ष की प्रतिपदाको पहले दाहिनी नाडी (पिंगला) के प्रवाह को एकाग्रचित्त होकर योगी जानें। अर्थात् समय समय पर चन्द्र और सूर्य स्वरके प्रवाह को योगियों को जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवा वारय भास्करम् ।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥६६॥

बुद्धिमान् व्यक्ति रातको चन्द्रस्वर को कभी भी न प्रवाहित करें। इसी प्रकार दिनको सूर्य स्वर को भी न चलावें। इस प्रकार नित्य अभ्यास करते रहने से प्रत्येक व्यक्ति योगी बन जाता है ॥ ६६ ॥

सूर्येण बध्यते सूर्यश्चंद्रश्चंद्रेण बध्यते ।
यो जानाति क्रियामेतांत्रैलोक्यं वशगंक्षणात्॥६७॥

सूर्य स्वर से सूर्य और चन्द्र स्वर से चन्द्रमा वश होते हैं। इस प्रकार स्वरों के प्रवाहों की क्रिया जानने वाले को सम्पूर्ण जगत् एक क्षण में वशीभूत हो जाता है ॥ ६७ ॥

उदयं चन्द्रमार्गेण सूर्येणास्तमनं यदि ।
तदा तैर्गुणसंघाता विपरीतं विवर्जयेत् ॥६८॥

चन्द्रमा के स्वर से दिनका प्रारम्भ और सूर्य के स्वर से उसका अन्त यदि हो तो इस प्रकार के स्वरों के प्रवाह के द्वारा अनेक शुभ फल उत्पन्न होते हैं। यदि इसके विपरीत प्रवाह रहा तो उस समय कोई भी शुभ कार्य न करे ॥ ६८ ॥

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिका ।
सिद्धिदा सर्वकार्येषु शुक्लपक्षे विशेषतः ॥६९॥

बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोमवार को यदि वाम नाडी या चन्द्रस्वर प्रवाहित हो तो सभी शुभकार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। खास कर यदि शुक्ल पक्ष में उक्त वारों में बायीं नाडी चले तो विशेष सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ६९ ॥

अर्कांगारकसौरीणां वासरे दक्षनाडिका ।
स्मर्त्तव्या चरकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः ॥७०॥

यदि दाहिनी नाडी (पिंगला) रवि, मंगल और शनिवार को चले और उसका स्मरण कर यदि चरकार्य (क्रूर आदि कार्य) किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होती है । वह कार्य कृष्णपक्षमें उक्त वारों में हो तो सिद्धि निश्चित ही प्राप्त होती है ॥ ७० ॥

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीये च तथानलः ।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारुणी वहेत् ॥७१॥

सबसे पहले नाडियों के प्रवाह में वायुतत्व बहता है । इसके बाद अग्नितत्व । उसके अनन्तर भूमितत्व और उसके बाद जलतत्व प्रवाहित होता है । सबके अन्त में आकाशतत्व भी प्रवाहित होता है ॥ ७१ ॥

सार्धद्विघटिके पञ्च क्रमेणैवोपयान्ति च ।
क्रमादेकैकनाड्यां च तत्त्वानां पृथगुद्भवः ॥७२॥

पहले कहे हुए पाँचो तत्वों का क्रमशः उदय ढाई घड़ियों में होता है । एक-एक नाड़ी में भी पाँचों तत्वों का क्रम से पृथक् रूप से उदय होता है ॥ ७२ ॥

अहोरात्रस्य मध्ये तु ज्ञेया द्वादश संक्रमाः ।
वृषकर्कटकन्यालिमृगमीना निशाकरे ॥७३॥

दिवस और रात्रि में बारह संक्रान्तियाँ जानी जाती हैं । उनमें वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ चन्द्र की मानी जाती हैं ॥ ७३ ॥

मेषसिंहौ च कुंभश्च तुला च मिथुनं धनम्।
उदये दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभ विनिर्णयः ॥७४॥

मेष, सिंह, कुम्भ, तुला, मिथुन और धन राशियाँ सूर्य की होती हैं। इसमें दक्षिण स्वर के उदय होने पर शुभ एवं अशुभ फल का निर्णय समझना चाहिये ॥ ७४ ॥

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिमदक्षिणे।
दक्षनाड्याः प्रसारे तु न गच्छेद्याम्यपश्चिमे ॥७५॥

चन्द्रमा पूर्व और उत्तर दिशा में और सूर्य पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में रहता है। इसलिये दाहिना स्वर अथवा दक्षिण नाडी चलने पर पश्चिम और दक्षिण दिशा की ओर यात्रा न करनी चाहिये ॥ ७५ ॥

वामाचार प्रवाहे तु न गच्छेत्पूर्वउत्तरे।
परिपंथि भयं तस्य गतोऽसौ न निवर्त्तते ॥७६॥

बायीं नाडी के प्रवाह के समय पूर्व और उत्तर दिशा की ओर यात्रा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई यात्रा करता है, तो उसे शत्रु का भय होता है। शत्रु के भय से युक्त होने पर भी वह कभी लौटता नहीं ॥ ७६ ॥

तत्र तस्मान्न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैषिभिः।
तदा तत्र तु संयाते मृत्युरेव न संशयः ॥७७॥

इसलिये सबके हितैषी विद्वानों ने, उक्त प्रकार की यात्रायें कभी नहीं करनी चाहिये ऐसा कहा है। अन्यथा वैसी यात्रा करने पर यात्री की मृत्यु होती है ॥ ७७ ॥

शुक्लपक्षे द्वितीयायामार्के वहति चन्द्रमाः।
दृश्यतेलाभदः पुंसां सौम्ये सौख्यं प्रजायते ॥७८॥

शुक्लपक्ष की द्वितीया को सूर्यस्वर के समय चन्द्रस्वर यदि चलता हो तो शुभकार्यों में सुख और लाभ की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है ॥ ७८ ॥

सूर्योदये यदा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रोदये भवेत्।
सिद्ध्यन्तिसर्वकार्याणि दिवारात्रि गतान्यपि॥७९॥

जिस दिन सूर्योदय के समय सूर्य स्वर और चन्द्रोदय के समय चन्द्रस्वर चलता हो, उस दिन रात में किये गये कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७९ ॥

चन्द्रकाले यदा सूर्यः सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत्।
उद्वेगः कलहो हानिः शुभं सर्वं निवारयेत् ॥८०॥

सूर्योदय के समय चन्द्रस्वर और चन्द्रोदय के समय सूर्यस्वर चलता हो तो उस समय कलह हानि अथवा दुःख आदि होते हैं। इस समय शुभ कर्म न करना चाहिये ॥ ८० ॥

सूर्यप्रवाहेप्रवदन्ति विद्या ज्ञानं ह्यगम्यस्य तु निश्चयेन
श्वासेनयुक्तस्यतुशीतरश्मेःप्रवाहकालेफलमन्यथास्यात्

विद्वान् कहते हैं कि सूर्यस्वर के प्रवाह के समय सूक्ष्मतम एवं कठिन विषय का भी ज्ञान अवश्य ही प्राप्त होता है। इसके विपरीत चन्द्रस्वर के प्रवाह के समय उक्त विषयों का ज्ञान नहीं होता ॥ ८१ ॥

विपरीत स्वरफलम्—

यदा प्रत्यूषकालेन विपरीतोदयो भवेत्।
चन्द्रस्थाने वहत्येको रविस्थाने च चन्द्रमा ॥८२॥

प्रातःकाल की चार घड़ियों से लेकर दिनभर स्वरों का यदि विपरीत उदय होता हो अर्थात् चन्द्रस्वर के समय सूर्यस्वर और सूर्यस्वर के समय चन्द्रस्वर चलता हो तो फल उलटा होता है ॥ ८२ ॥

प्रथमे मनउद्वेगं धनहानिर्द्वितीयके।
तृतीये गमनं प्रोक्तमिष्टनाशं चतुर्थके ॥८३॥

प्रथम समय में (पहली चार घड़ियों में) स्वर विपरीत होने से मन उद्विग्न होता है। दूसरे समय में धन का नाश होता है। तीसरे समय में यात्रा एवं चौथी बार इष्ट द्रव्य का नाश होता है ॥ ८३ ॥

पंचमे राज्यविध्वंसः षष्ठे सर्वार्थनाशनम्।
सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमादिशेत् ॥८४॥

पाँचवें समय में राज्य का नाश और छठवें समय में सभी अर्थों का नाश होता है, सातवें समय में रोग और दुःख और आठवें समय में मृत्यु होती है। इस प्रकार स्वरों का विपरीत फल होता है ॥ ८४ ॥

कालत्रये दिनान्यष्ट विपरीतं यदा वहेत्।
तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किञ्चिन्न्यूनं तु शोभनम् ॥८५॥

तीनों समय आठ दिन तक यदि विपरीत स्वर प्रवाहित हो तो बुरा फल मिलता है। इस अवधि में यदि कुछ न्यूनता हो तो फल शुभ होता है ॥ ८५ ॥

प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायंकाले दिवाकरः।
तदा नित्यं जयो लाभो विपरीतं विवर्जयेत्॥८६॥

प्रातःकाल और मध्याह्न में यदि चन्द्रस्वर चले और सायंकाल को सूर्य स्वर चले तो नित्य ही विजय प्राप्त होती है। यदि इसके विपरीत स्वर चले तो पराजय होती है। अतः विपरीत अवस्था में युद्ध आदि न करे ॥ ८६ ॥

वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवः।
कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा॥८७॥

बायाँ अथवा दाहिना स्वर जिस समय प्रवाहित हो और उसके साथ शिव स्वर (सुषुम्ना) भी यदि चलता हो, उस समय उस ओर का पाँव आगे रखकर प्रस्थान करना चाहिये। इससे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८७ ॥

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा।
पूर्णं पादं पुरस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा॥८८॥

चन्द्रस्वर के प्रवाह के समय सम (बायाँ) आगे रखकर और सूर्यस्वर के प्रवाह के समय विषम पाँव (दाहिना) आगे रखकर यात्रा करने से सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

यत्रांगे वहते वायुस्तदंग करसच्चखात् ।
सुप्तोत्थितो मुखं स्पृष्ट्वा लभते वाञ्छितं फलम् ॥८९॥

सोकर उठते समय जिस ओर का स्वर चलता हो, उसी ओर के हाथ से जो अपने मुख का स्पर्श करता है, उसे इष्ट फल प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥

परदत्ते तथा ग्राहे गृहान्निर्गमनेऽपि च ।
यदंगे वहते नाडी ग्राह्यं तेन करांघ्रिणा ॥९०॥

जिस ओर का स्वर चलता हो उसी ओर के हाथ से लेन देन एवं उस ओर का पाँव आगे रखकर प्रस्थान करना उत्तम होता है ॥ ९० ॥

न हानिः कलहो नैव कंटकैर्नापि भिद्यते ।
निवर्त्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः ॥९१॥

उक्त प्रकार के आचरण करने पर कलह, हानि, नाश आदि (शत्रुओं द्वारा) नहीं होते हैं। वह सभी कष्टों से मुक्त होकर सुखसे अपने घर वापस आता है ॥ ९१ ॥

गुरुबन्धुनृपामात्येष्वन्येषु शुभदायिनी ।
पूर्णांगे खलु कर्त्तव्या कार्यसिद्धिर्मनःस्थिता ॥९२॥

गुरु, राजा, भाई, मन्त्री, शुभ फल देनेवाले लोगों में उसी ओर बैठकर अपना कार्य करें, जिस ओर का स्वर चल रहा हो। इस प्रकार कार्य करने से इच्छित कार्य की सिद्धि होती है ॥ ९२ ॥

अग्निचौराधर्मधर्मा अन्येषां वादिनिग्रहः ।
कर्त्तव्यः खलु रिक्तायां जयलाभसुखार्थिभिः ॥६३॥

विजय, लाभ एवं सुख चाहने वालों को रिक्ता नामक नाडी के प्रवाह के समय आग लगाना, चोरी करना, धर्म और अधर्म का काम करना, और प्रतिवादियों को हराना आदि कार्य करने चाहिये ॥ ६३ ॥

दूरदेशे विधातव्ये गमनं तु हिमद्युतौ ।
अभ्यर्णदेशे दीप्तं तु तरणाविति केचन ॥६४॥

कुछ लोगों का मत है कि दूर देशों की यात्रा चन्द्रस्वरमें और समीप देशों की यात्रा सूर्य स्वर में करनी चाहिये ॥६४॥

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टं लाभादि समरागमः ।
तत्सर्वं पूर्णनाडीषु जायते निर्विकल्पकम् ॥६५॥

युद्ध और लाभ आदि के विषय में जो पहले कहा गया है, वह पूर्ण नाडी के प्रवाह में निस्सन्देह सफल होता है ॥६५॥

शून्यनाड्या विपर्यस्तं तत्पूर्वं प्रतिपादितम् ।
जायते नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥६६॥

शून्य नाडी के प्रवाह के समय पूर्वोक्त युद्ध, लाभ आदि निष्फल होते हैं। यह कथन सर्वज्ञ शिवजी का होने के कारण कभी असत्य नहीं हो सकता है ॥ ६६ ॥

व्यवहारे खलोच्चाटे द्वेषिविद्यादिवञ्चके ।
कुपितस्वामिचौराद्ये पूर्णस्थाःस्युर्भयंकराः ॥६७॥

पूर्णस्वरके प्रवाहके समय व्यावहारिक कार्योंका करना, दुष्टोंको दण्ड देना, द्वेष करना, विद्या देना, ठगना, स्वामीका क्रोध करना, चोरी करना आदि काय भयंकर फल देते हैं ॥९७

दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्नोऽभीष्टसिद्धिदः ।
प्रवेशकार्यहेतौ च सूर्यनाडी प्रशस्यते ॥९८॥

चन्द्रस्वर दूर देशकी यात्राको निर्विघ्नरूपसे पूर्ण करनेमें और इष्ट वस्तुकी प्राप्ति करा देनेमें शुभ होता है। गृह प्रवेश आदि कार्यों के लिये सूर्यस्वर शुभ कहा गया है।९८॥

अयोग्ये योग्यता नाड्या योग्यस्थानेऽप्ययोग्यता ।
कार्यानुबन्धनो जीवो यथा रुद्रस्तथाचरेत् ॥९९॥

अयोग्य स्थानमें नाड़ीकी (स्वरकी) योग्यता एवं योग्य-स्थानमें नाडीकी अयोग्यता हो सकती है। क्योंकि यह प्राणी कार्य के बन्धनसे मुक्त नहीं है। इसलिये रुद्र नाड़ी (सुषुम्ना) जैसी चले उसी प्रकार कार्य करना श्रेयस्कर है ॥९९॥

चन्द्राचारे विषहते सूर्यो बलिवशं नयेत् ।
सुषुम्नायांभवेन्मोक्ष एको देवस्त्रिधा स्थितः॥१००॥

चन्द्रस्वर विष हरण करता है और सूर्यस्वर बलवान्को भी वश करनेवाला है। सुषुम्ना नाडीके प्रवाहमें मोक्ष होता है। इस तरह एक देवता तीन रूपोंमें रहता है ॥१००॥

शुभान्यशुभकार्याणि क्रियतेऽहर्निशं यदा ।
तदा कार्यानुरोधेन काय नाडी प्रचालनम् ॥१०१॥

शुभ अथवा अशुभ जो भी कार्य दिन या रातमें किया जाता है, उस कार्यके अनुकूल हो नाड़ीका चलना आवश्यक है। इस प्रकार कार्यके अनुकूल स्वरका प्रवाह सिद्धि देता है।१०१

इड़ाफलम्—

स्थिरकर्मण्यलंकारे दूराध्वगमने तथा।
आश्रमे धर्मप्रासादे वस्तूनां संग्रहेऽपि च ॥१०२॥

इड़ा नाड़ी का फल—पूजन, तपस्या आदि स्थिर कार्य करनेमें, आभूषणोंको धारण करनेमें, दूर देशोंमें जानेमें, ब्रह्मचर्य गृहस्थ आदि चारों आश्रमोंके धर्मको पालन करनेमें घरमें रहनेमें और वस्तुओं का संग्रह करने में इड़ानाड़ीका चलना उत्तम होता है ॥१०२॥

वापी कूप तडागानां प्रतिष्ठा स्तम्भदेवयोः।
यात्रा दाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे ॥१०३॥

सरोवर, कुआँ तालाब आदि बनवाना, खम्भेको गाड़ना, देवताकी प्रतिष्ठा करना, यात्रा, दान, विवाह, वस्त्र तथा अलंकार आदि धारण करना इड़ानाड़ी के प्रवाहके समय करना चाहिये ॥१०३॥

शान्तिके पौष्टिके चैव दिव्यौषधि रसायने।
स्वस्वामिदर्शने मित्रे वाणिज्ये कणसंग्रहे ॥१०४॥

शान्तिजनक कार्य, पौष्टिक कर्म, दिव्य औषधि एवं रसायनों का निर्माण, मालिकका दर्शन, मैत्री स्थापन, व्यापार, अन्नसंग्रह आदि कार्यों में इडा नाड़ी शुभ होती है ॥१०४॥

गृहप्रवेशे सेवायां कृषौ च बीजवापने ।
शुभकर्मणि सन्धौ च निर्गमे च शुभः शशिः ॥१०५॥

गृहप्रवेश, सेवा, खेती, बोना, शुभकार्य, सन्धि (मित्रता) प्रस्थान आदिमें इडा नाड़ी शुभ है ॥१०५॥

विद्यारम्भादि कार्येषु बान्धवानां च दर्शने ।
जन्ममोक्षे च धर्मे च दीक्षायां मन्त्रसाधने ॥१०६॥

विद्याध्ययन का आरम्भ, भाइयों का दर्शन, जन्म एवं मरण, धर्म का अनुष्ठान, दीक्षा का ग्रहण, मन्त्र-सिद्धि कार्यों में इड़ा नाड़ी श्रेष्ठ है ॥१०६॥

काल-विज्ञान-सूत्रे तु चतुष्पाद-गृहागमे ।
कालव्याधिचिकित्सायां स्वामिसम्बोधने तथा।१०७।

काल का ज्ञान, यज्ञोपवीत को धारण करना और वेद का अध्ययन करना पशुओं को घर में लाना, कठिन रोगों की चिकित्सा करना, तथा मालिक को बुलाना आदि कार्य इडा नाडीमें शुभ होते हैं ॥१०७॥

गजाश्वारोहणे धन्वि गजाश्वानां च बन्धने ।
परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने तथा ॥१०८॥

हाथी घोड़ोंपर चढ़ना, धनुर्विद्याका अध्ययन, हाथी घोड़ों को बाँधना (घर में) दूसरों का उपकार करना, सम्पत्ति का संग्रह करना आदि कार्य इडा नाड़ी में सफल होते हैं ॥१०८॥

गीतवाद्यादि नृत्यादौ नृत्यशास्त्र विचारणे ।
पुरग्रामनिवेशे च तिलकक्षेत्रधारणे ॥१०६॥

गायन करना, बाजा बजाना, नाचना, नाट्य शास्त्र का विचार करना, गाँव और शहरमें प्रवेश करना, तिलक लगाना, खेत खरीदना आदि के लिये इड़ा नाड़ी शुभ है । १०६॥

आर्तिशोकविषादे च ज्वरिते मूर्च्छितेऽपि वा ।
स्वजनस्वामिसम्बन्धे अन्नादेर्दारुसंग्रहे ॥११०॥

दुःख, शोक, विषाद, ज्वर, मूर्छा आदि में स्वजन तथा मालिक के सम्बन्ध में और अन्न, लकड़ी आदि के संग्रह करने में इड़ा नाड़ी शुभ होती है ॥११०॥

स्त्रीणां दन्तादि भूषायां वृष्टेरागमने तथा ।
गुरुपूजाविषादीनां चालने च वरानने ॥१११॥

हे पार्वती ! स्त्रियों के दन्तआभूषणों को लगानेमें (मिस्सी आदि लगाने में) वृष्टि के आगमन में, गुरु के पूजन में एवं विष को उतारने में इड़ा नाड़ी शुभ होती है ॥१११॥

इडायां सिद्धिदं प्रोक्तं योगाभ्यासादि कर्म च ।
तत्रापि वर्जयेद्वायुं तेज आकाशमेव च ॥११२॥

योगाभ्यास आदि कार्य इड़ा नाडी में सिद्धि प्राप्त कराते हैं । किन्तु इडा नाडी में यदि तेज, वायु और आकाश तत्त्व उदित हों तो उक्त कार्य न करने चाहिये । [इडा नाडीमें पृथ्वी

और जल तत्त्व उदित रहने पर ही उक्त काय सिद्ध होते हैं।] ॥११२॥

सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति दिवारात्रिगतान्यपि ।
सर्वेषु शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥११३॥

दिन अथवा रातमें किये गये सभी कार्य चन्द्रस्वर [इडा नाडी] में सिद्ध होते हैं। सभी शुभ कार्यों में चन्द्रस्वर श्रेष्ठ होता है ॥११३॥

पिंगला नाडी का फल—

कठिन-क्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसंगवेश्यागमने महानौकाधिरोहणे ॥११४॥

पिंगला नाडी का फल—कठिन एवं क्रूर विद्याओं को पढ़ने और पढ़ानेमें, स्त्री अथवा वेश्याके यहाँ जानेमें और बड़ी नाव पर चढ़ने में पिंगला नाडी शुभ होती है ॥११४॥

भ्रष्टकार्ये सुरापाने वीरमन्त्राद्युपासने ।
विह्वलाद् ध्वंसदेशादौ विषदाने च वैरिणम् ॥११५॥

खराब कार्य करने में, सुरा पीने में, अस्त्रशस्त्रों के मन्त्र सिद्ध करने में, दुःख भोगनेमें, देशों को नष्ट करने में और शत्रु को विष देनेमें पिंगला नाडी श्रेष्ठ है ॥११५॥

शास्त्राभ्यासे च गमने मृगया पशुविक्रये ।
इष्टिका-काष्ठ - पाषाण - रत्नघर्षणदारुणे ॥११६॥

शास्त्रोंका अध्ययन, गमन, शिकार, पशुओंका विक्रय, ईंट, लकड़ी, पत्थर, रत्न आदिको घिसकर बनाना, बुरे कार्य करना आदि में पिंगला नाडी शुभ है ॥११६॥

शस्त्राभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दुर्गपर्वतरोहणे ।
द्यूते चौर्ये गजाश्वादि रथसाधनवाहने ॥११७॥

शस्त्रोंके चलानेका अभ्यास करना, यन्त्र और तन्त्रोंका व्यवहार करना, किलों और पहाड़ों पर चढ़ना, जुआ खेलना चोरी करना, हाथी, घोड़ा, रथ आदि वाहनों पर चढ़ना आदि पिंगला नाडीमें सफल होते हैं ॥११७॥

व्यायामे मारणोच्चाटे षट्कर्मादि साधने ।
यक्षिणी-यक्ष-वेताल-विषभूतादिनिग्रहे ॥११८॥

व्यायाम करनेमें, जारण-मारण उच्चाटन षट्कर्म आदि की साधनामें, यक्ष-यक्षिणी, बेताल भूत, विष आदिके प्रभाव को नष्ट करने में पिंगला नाडी शुभ होती है ॥११८॥

खरोष्ट्रमहिषादीनां गजाश्वारोहणे तथा ।
नदी-जलौघ-तरणे भेषजे लिपिलेखने ॥११९॥

गदहा, ऊँट, भैंसा, भैंस आदि रखने में हाथी घोड़ों पर, चढ़ने में, नदी तालाब आदि पार करने में, दवा लेने में और अक्षरों को लिखने में पिंगला नाडी श्रेष्ठ है ॥११९॥

मारणे मोहने स्तम्भे विद्वेषोच्चाटने वशे ।
प्रेरणे कर्षणे क्षोभे दाने च क्रयविक्रये ॥१२०॥

मारण, मोहन, स्तम्भन, शत्रुओं का उच्चाटन, वशीकरण, मन्त्रों का प्रयोग, आकर्षण, क्षोभ, दान देना, खरीदना, बेचना आदि कार्य पिंगलनाडी में सफल होते हैं ॥१२०॥

प्रेताकर्षण विद्वेषे शत्रु निग्रहणेऽपि च ।
खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने ।
भोज्ये स्नाने च व्यवहारे दीप्तकार्येरविः शुभः॥१२१॥

प्रेतोंको वश करना, द्वेष करना, शत्रुओं को दण्ड देना, हाथ में तलवार लेना, शत्रुओं से युद्ध करना, उपभोग करना, राजाका दर्शन करना, भोजन, स्नान आदि कार्य और तेजस्वी कार्यों में पिंगला नाडी शुभ होती है ॥१२१॥

भुक्तमार्गे च मंदाग्नौ स्त्रीणां वेश्यादि कर्मणि ।
शयनं सूर्यवाहेन कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥१२२॥

उपभोग करनेमें, मन्दाग्निमें, स्त्री गमनमें, व्यापार कार्य में और सोने में सूर्य स्वर (पिंगला नाडी) श्रेष्ठ माने जाने के कारण पूर्वोक्त कार्य सूर्य स्वर में ही करने चाहिये ॥१२२॥

क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च ।
तानिसिद्ध्यन्तिसूर्येण नात्रकार्याविचारणा॥१२३॥

सभी प्रकार के क्रूर कार्य और विभिन्न प्रकार के छोटे बड़े कार्य सूर्य स्वर में सिद्ध होते हैं । इसमें बिलकुल शंका न करनी चाहिये ॥१२३॥

सुषुम्ना लक्षणम्—

क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः ।
सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा स्मृता ॥१२४॥

सुषुम्ना नाडीका लक्षण—जब एक क्षणमें बाँयी और दूसरे ही क्षणमें दाहिनी नाडी चलती है तो इस प्रकार क्षण क्षण में परिवर्तनशील नाडी को सुषुम्ना कहते हैं। यह सभी कार्यों को नष्ट करती है ॥१२४॥

तस्यां नाड्यां स्थितो वह्निर्ज्वलते कालरूपकः ।
विषवत्तां विजानीयात्सर्वकार्यविनाशिनिम् ॥१२५॥

उस सुषुम्ना नाडी में कालरूप प्रज्वलित अग्नि रहता है। इस नाडीको विष सदृश सब कार्यों को नष्ट करनेवाली समझना चाहिये ॥१२५॥

यदानुक्रममुल्लंघ्य यस्य नाडीद्वये वहेत् ।
तदा तस्य विजानीयादशुभं नात्र संशयः ॥१२६॥

जब स्वरों के प्रवाह के नियम का उल्लंघन कर नाडियों में वायु प्रवाहित होता है अर्थात् सूर्य स्वर के समय चन्द्रस्वर एवं चन्द्रस्वर के समय सूर्यस्वर चलता है तब उसका निस्सन्देह अशुभ होता है ॥१२६॥

क्षणं वामे क्षणं दक्षे विषमं भागमादिशेत् ।
विपरीतं फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यं च वरानने ! ॥१२७॥

हे पार्वती ! एकचरण बाँया और एकचरण दाहिना स्वर यदि प्रवाहित होतो इसको विषमभाग कहा गया है। इसका फल विपरीत समझना चाहिये ॥१२७॥

उभयोरेव संचारं विषवत्तं विदुर्बुधाः।
न कुर्यात्क्रूरसौम्यानि तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥१२८॥

विद्वान् लोगों ने एक समय में दोनों स्वरों के प्रवाह को विष-तुल्य माना है। ऐसे समयमें सौम्य और क्रूर दोनों प्रकार के कार्य सफल नहीं होते ॥ १२८ ॥

जीविते मरणे प्रश्ने लाभालाभे जयाजये।
विषमे विपरीतं च संस्मरेज्जगदीश्वरम् ॥१२९॥

जीवन और मृत्यु के विषय के प्रश्न, लाभ और अलाभ (हानि) जय और पराजय आदि विषयक कार्य स्वरों के विपरीत प्रवाह के समय में न करने चाहिये। ऐसे समय में केवल ईश्वर का स्मरण करना उत्तम है ॥ १२९ ॥

ईश्वरे चिन्तिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं जयलाभसुखैषिभिः ॥१३०॥

विजय, लाभ और सुख चाहने वाले लोगों को ईश्वर का चिन्तन योगाभ्यास आदि कार्यों के अतिरिक्त कार्य न करना चाहिये ॥ १३० ॥

सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः।
शापं दद्याद्वरं दद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ॥१३१॥

सूर्यस्वर से मिली हुई सुषुम्ना नाडि यदि बारंबार प्रवाहित हो तो उस समय शाप या वर देना भी निष्फल होता है॥१३१॥

नाडीसंक्रमणे काले तत्त्वसंगमनेऽपि च।
शुभं किंचिन्न कर्त्तव्यं पुण्यदानानि कोटिधा॥१३२॥

नाडियों के प्रवाह बदलने के समय और तत्त्वोंके भी परिवर्तन के समय पुण्यदायक दान आदि कार्यों के अतिरिक्त कोई भी शुभ कार्य न करना चाहिये॥ १३२॥

विषमस्योदयो यत्र मनसाऽपि न चिन्तयेत्।
यात्रा हानिकरी तस्य मृत्युः क्लेशो न संशयः॥१३३॥

यदि कोई स्वर उलटा चलता हो तो उस समय कोई भी शुभ कार्य न करें। ऐसे समय में निस्सन्देह यात्रा हानिकारक होती है और दुःख एवं मृत्यु भी उसे प्राप्त होती है॥ १३३॥

पुरो वामोर्ध्वतश्चन्द्रो दक्षाधः पृष्ठतो रविः।
पूर्णरिक्तविवेकोऽयं ज्ञातव्यो देशिकैः सदा॥१३४॥

चन्द्रस्वर का प्रवाह यदि आगे बायें और ऊपर की ओर हो तो उसे पूर्ण समझना चाहिये। इसके विपरीत यदि प्रवाह हो तो उसे शून्य समझे। इसी प्रकार सूर्यस्वर का प्रवाह पीछे, दाहिने और नीचे की ओर हो तो उसे पूर्ण और इसके विपरीत शून्य समझना चाहिये॥ १३४॥

ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथि स्थितः।
पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्तात्सूर्यवाहागतः शुभः॥१३५॥

चन्द्रस्वरके प्रवाहके समय यदि कोई दूत बायीं ओर, सामने अथवा ऊपरको ओर बैठे तो वह शुभ समझना चाहिये । इसी प्रकार सूर्य स्वरके प्रवाहके समय पीछे, दाहिने अथवा नीचे बैठा दूत शुभ होता है ॥ १३५ ॥

अनादिर्विषमः सन्धिः निराहारो निराकुलः ।
परे सूक्ष्मे विलीयेत स संध्या सद्भिरुच्यते ॥१३६॥

पण्डित लोग अनादि, निराहार और निराकुल विषम सन्धि (सुषुम्ना नाडी की) जब सूक्ष्म तत्त्वमें एकरूपता हो जाती है तो उसे संध्या कहते हैं ॥ १३६ ॥

न वेदं वेद इत्याहुर्वेदो वेदो न विद्यते ।
परात्मा विद्यते येन स वेदो वेद उच्यते ॥१३७॥

इस स्वरोदय शास्त्रके अनुसार प्रसिद्ध वेदों को वेद नहीं माना गया है । क्योंकि वेद उसीको कहा जाता है जिसमें परमात्मारूप तत्त्वका प्रतिपादन किया गया हो ॥ १३७ ॥

न सन्ध्या संधिरित्याहुः संध्या संधिर्निगद्यते ।
विषमः संधिगः प्राणः सा सधि संधिरुच्यते ॥१३८॥

दिन रातकी सन्धिको वास्तवमें सन्ध्या नहीं कहा जाता । अपितु विषम सन्धिमें अर्थात् सुषुम्ना नाडामें रहनेवाले प्राण को ही सन्धि कहा जाता है ॥ १३८ ॥

॥ नाडीभेदः समाप्तः ॥

देवी उवाच—

देव देव महादेव सर्वसंसारतारक ।
स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ॥१३९॥

पार्वतीजी ने कहा कि हे देवाधिदेव शंकरजी ! सम्पूर्ण संसार को तारनेवाले प्रभो ! आप अपने हृदय में स्थित रहस्य को मुझसे कहिये ॥ १३९ ॥

शिव उवाच—

स्वरज्ञानरहस्यात्तु न काचिद्विष्टदेवता ।
स्वरज्ञानरतो योगी स योगी परमो मतः ॥१४०॥

महादेवजी ने कहा कि स्वर ज्ञानसे अतिरिक्त कोई भी इष्ट देवता नहीं है । इस स्वर ज्ञानकी साधना में निमग्न योगी ही श्रेष्ठ योगी है ॥ १४० ॥

पञ्चतत्त्वाद्भवेत्सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं प्रलीयते ।
पंच तत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥१४१॥

पाँचों तत्त्वों से सृष्टि होती है और तत्त्वों में ही तत्त्वों का लय होता है । इसलिये पाँचों तत्त्व श्रेष्ठ हैं और इन तत्त्वों के अतिरिक्त केवल ईश्वर ही है ॥ १४१ ॥

तत्त्वानां नाम विज्ञेय सिद्धियोगेन योगिनाम् ।
भूतानां दुष्टचिह्नानि जानातीह स्वरोत्तमः ॥१४२॥

योगियों को योगसिद्धि के द्वारा तत्त्वों के नाम जानने चाहिये । स्वरों का श्रेष्ठ जानकर प्राणियों के दुष्ट लक्षणों को जान सकता है ॥ १४२ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
पञ्चभूतात्मकं विश्वं यो जानाति स पूजितः ॥१४३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व हैं। इन्हीं के द्वारा इस संसार का निर्माण हुआ है ऐसा जाननेवाला वन्दनीय है ॥ १४३ ॥

सर्वलोकस्य जीवानां न देहो भिन्नतत्त्वकः।
भूलोकात्सत्यपर्यन्तं नाडीभेदः पृथक् पृथक् ॥१४४॥

सभी लोकों में रहनेवालोंके भी देहों में तत्त्व भिन्न भिन्न नहीं हैं, किन्तु भूलोक से सत्य लोक तक के जीवों में नाडी-भेद पाया जाता है ॥ १४४ ॥

वामे वा दक्षिणे वापि उदयाः पञ्च कीर्तिताः।
अष्टधा तत्त्वविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि! ॥१४५॥

हे पार्वती! चन्द्र और सूर्य स्वर में पाँचों तत्त्वोंका उदय कहा गया है। अब आठ प्रकार का तत्त्व-विज्ञान मैं कहता हूँ। उसे सुनो॥ १४५ ॥

प्रथमे तत्त्वसंख्यानं द्वितीये श्वाससंधयः।
तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे स्थानमेव च ॥१४६॥

पहले तत्त्वों की संख्या, दूसरे में श्वास की सन्धियाँ, तृतीय में स्वरों के चिन्ह और चौथे प्रकार में स्वरों के स्थान कहे गये हैं॥ १४६ ॥

पञ्चमे तस्य वर्णाश्च षष्ठे तु प्राण एव च।
सप्तमे स्वादसंयुक्ता अष्टमे गतिलक्षणम् ॥१४७॥

पाँचवे भाग में स्वरों के रूप, छठें भाग में प्राण, सातवें में स्वाद और आठवें भाग में स्वरों की गति के लक्षण कहे गये हैं ॥१४७॥

एवमष्टविधं प्राणं विषुवंतं सचराचरम्।
स्वरात्परतरं देवि नान्यथा त्वम्बुजेक्षणे ॥१४८॥

आठ प्रकार के प्राण आदि वायु इस समस्त संसार में वर्तमान हैं। हे कमलनयने! स्वरों से श्रेष्ठतर दूसरा कुछ भी नहीं है ॥ १४८ ॥

निरीक्षितव्यं यत्नेन सदा प्रत्यूषकालतः।
कालस्य वंचनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः ॥१४९॥

प्रयत्न पूर्वक सुबह से ही स्वरों के प्रवाह का निरीक्षण करना चाहिये। योगी लोग इसीलिये काल को ठगने के लिये योग-कार्य किया करते हैं ॥ १४९ ॥

श्रुत्योरंगुष्ठकौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये।
वदनप्रांतके चान्यांगुलिर्दद्याच्च नेत्रयोः ॥१५०॥

दोनों हाथों के अँगूठों को दोनों कानों में, दोनों बीचकी अँगुलियों को नाक के छेदों में, मुख पर अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों को और आँखों पर तर्जनी अँगुलियोंको रखना चाहिये ॥ १५० ॥

अस्यां तत्तु पृथिव्यादि तत्त्वज्ञानं भवेत्क्रमात् ।
पीतश्वेतारुणश्यामैर्विन्दुभिर्निरुपाधिकम् ॥१५१॥

इस प्रकार कार्य करने से पृथ्वी, जल आदि पाँचों तत्त्वोंका ज्ञान क्रम से होता है। उक्त प्रकारे के कार्य को षण्मुखी मुद्रा भी कहते हैं। उपाधि रहित होकर पृथ्वी पीली, पानी श्वेत, अग्नि लाल, वायु कृष्ण वर्णके दिखाई देते हैं। आकाश का रूप सभी रङ्गोंके मिश्रण जैसा विचित्र होता है ॥ १५१ ॥

दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात्तत्त्वमेव विचक्षणः ॥१५२॥

दर्पण में देखकर उस पर अपना श्वास छोड़ना चाहिये और उस श्वास के आकृति से बुद्धिमान् को तत्त्वों का भेद जानना चाहिये ॥ १५२ ॥

चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम् ।
बिन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्वलक्षणम् ॥१५३॥

चौकोने, अर्ध चन्द्र की तरह के, तिकोने और गोल आकृतियों को श्वास से क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज और वायु का लक्षण समझना चाहिये ॥ १५३ ॥

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः ।
तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभो वहति संक्रमः ॥१५४॥

पृथ्वी तत्त्व से युक्त स्वर मध्य में, जल तत्त्व युक्त स्वर नीचे की ओर तेज तत्त्व मिश्रित स्वर ऊपर की ओर, वायु तत्त्व

ये युक्त स्वर तिरछा और आकाश तत्त्व युक्त स्वर दो स्वरों के प्रवाह रूप में प्रवाहित होता है ॥ १५४ ॥

आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः ।
मारुतो नीलजीमूत आकाशः सर्ववर्णकः ॥१५५॥

पृथ्वी का रूप पीला, जल का श्वेत, तेज तत्त्व का लाल, वायु तत्त्व का मेघ की तरह नीला और आकाश का रूप सभी रूपों का मिश्रण (चित्र रूप) होता है ॥ १५५ ॥

स्थानपरत्वे तत्त्वज्ञानम्—

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिमूले प्रभंजनः ।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पदान्ते मस्तके नभः ॥१५६॥

तत्त्वों के स्थान—मनुष्यके शरीर में दोनों कन्धों में अग्नि तत्त्व रहता है। इसी प्रकार वायु तत्त्व नाभी के मूल में पृथ्वी तत्त्व घुटनों में, जल तत्त्व पावों के अन्तिम भाग में और आकाश तत्त्व सिर में रहता है ॥ १५६ ॥

स्वादसे तत्त्वज्ञान प्रकार—

माहेयं मधुरं स्वादं कषायं जलमेव च ।
तीक्ष्णं तेजःसमीरोऽम्ल आकाशं कटुकं तथा॥१५७

तत्त्वों के स्वाद—पृथ्वी तत्त्व का स्वाद मधुर, जल तत्त्व का कसैला, तेज का तीखा (तीता) वायु का खट्टा और आकाश तत्त्व का कड़ुवा होता है ॥ १५७ ॥

गति से तत्त्वज्ञान—

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरंगुलम् ।
द्वादशांगुलिर्माहेयं वारुणं षोडशांगुलम् ॥१५८॥

तत्त्वों की गतिः—वायु तत्त्व का प्रवाह आठ अङ्गुल तक रहता है। इसी प्रकार अग्नि तत्व का चार अङ्गुल तक, पृथ्वी तत्व का बारह अङ्गुल तक और जल तत्व का सोलह अङ्गुल तक प्रवाह होता है ॥ १५८ ॥

ऊर्ध्वं मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यगुच्चाटनं तथा ।
मध्ये स्तंभं विजानीयान्नभः सर्वत्र मध्यमम् ॥१५९॥

ऊपर की ओर अग्नि तत्व का प्रवाह मृत्युजनक होता है। नीचे की ओर जल तत्व का प्रवाह शान्तिदायक, वायु का तिरछा प्रवाह उच्चाटन आदि कार्य के अनुकूल, पृथ्वी का मध्य का प्रवाह स्तंभनकारक और आकाश तत्व का प्रवाह साधारण होता है ॥ १५९ ॥

पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि वारुणे ।
तेजसि क्रूरकर्माणि मारणोच्चाटनेऽनिले ॥१६०॥

पृथ्वी तत्व के उदय काल में स्थिर कार्य, जल के उदय में चरकार्य, तेज तत्व के उदय में क्रूरकार्य और वायु तत्वमें मारण उच्चाटन आदि कार्य सिद्धिजनक होते हैं ॥ १६० ॥

व्योम्नि किञ्चिन्न कर्त्तव्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ।
शून्यता सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ॥१६१॥

आकाश तत्व के उदय में योगाभ्यास के अतिरिक्त कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये। यदि इस तत्व के उदय कालमें योगाभ्यास से भिन्न कार्य किये जाते हैं तो निःसन्देह सभी कार्यों में असफलता प्राप्त होती है॥ १६१॥

पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्यान्मृत्युर्वह्नौ क्षयोऽनिले।
नभसो निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववादिभिः॥१६२॥

पृथ्वी एवं जल तत्व के उदय से सिद्धि, अग्नि तत्व के उदय से मृत्यु, वायु तत्व के उदय से नाश और आकाश तत्वके उदय से निष्फलता प्राप्त होती है। ऐसा तत्ववादियों को जानना चाहिये॥ १६२॥

चिरलाभः क्षितौज्ञेयस्तत्क्षणे तोयतत्त्वतः।
हानिःस्याद्वह्निवाताभ्यां नभसोनिष्फलंभवेत्॥१६३॥

पृथ्वी तत्व के उदय में लाभ देरी से होता है। इसी प्रकार जल तत्व के उदय में शीघ्र लाभ, तेज और वायु तत्व में हानि और आकाश तत्वमें असफलता प्राप्त होती है॥ १६३॥

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद् गुरुध्वनिः।
कवोष्णः पार्थिवो वायुःस्थिर कार्यप्रसाधकः॥१६४॥

जिस स्वरमें पृथ्वीतत्व उदित रहता है उसका रङ्ग पीला, उसकी गति मन्द ठोडी तक मध्यम, उसका शब्द गम्भीर, स्पर्श कुनकुना होता है। यह स्थिर कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है॥ १६४॥

अधोवाही गुरुध्वानः शीघ्रगः शीतल स्थितः।
यः षोडशांगुलो वायुः स आपः शुभकर्मकृत् ॥१६५॥

जलतत्व वाला स्वर नीचे की ओर बहने वाला, गम्भीर शब्द युक्त, शीघ्रगति ठंडा और सोलह अङ्गुल परिमाण वाला होता है और शुभ कार्यों को पूर्ण करता है ॥ १६५ ॥

आवर्त्तगश्चात्युष्णश्च शोणाभश्चतुरंगुलः।
उर्ध्ववाही च यः क्रूरकर्मकारी स तैजसः ॥१६६॥

बहुत गरम चक्रकी भाँति बहनेवाला, लाल रङ्गका, चार अङ्गुल परिमाण वाला, ऊपर जाने वाला, तेज तत्व युक्त स्वर होता है। इसमें क्रूर कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १६६ ॥

उष्णः शीतः कृष्णवर्णस्तिर्यग्गाम्यष्टकांगुलः।
वायुः पवनसंज्ञस्तु चरकर्मप्रसाधकः ॥१६७॥

थोड़ा उष्ण और थोड़ा शीतल, काले वर्णका, आठ अङ्गुल परिमाण वाला, तिरछी गतिवाला, वायु तत्वसे युक्त स्वर होता है। इसमें चरकार्य सिद्ध होते हैं ॥ १६७ ॥

यः समीरः समरसः सर्वतत्त्वगुणावहः।
आम्बरंतंविजानीयाद्योगिनां योगदायकम् ॥१६८॥

सभी तत्त्वोंके गुणोंसे युक्त और समरससे युक्त आकाश तत्वयुक्त स्वर होता है। यह योगाभ्यासमें योगियोंको सिद्धि देने वाला है ॥ १६८ ॥

पीतवर्णं चतुष्कोणं मधुरं मध्यमाश्रितम् ।
भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे द्वादशांगुलम् ॥१६९॥

पृथ्वी तत्व पीले रङ्गका चौकोन, मधुर, मध्यमें प्रवाहित होनेवाला, भोग देनेवाला और बारह अङ्गुल तक प्रवाह वाला होता है ॥ १६९ ॥

श्वेतमर्धेन्दु संकाशं स्वादु काषायमार्द्रकम् ।
लाभकृद्वारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशांगुलम् ॥१७०॥

जलतत्व सफेद रङ्गका, अर्धचन्द्रकी तरह आकृतिका, कसैला, भींगा हुआ, सोलह अङ्गुल परिमाण वाला और लाभ-दायक होता है ॥ १७० ॥

रक्तं त्रिकोणं तीक्ष्णं च उर्ध्वभागे प्रवाहकम् ।
दीप्तं च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुरंगुलम् ॥१७१॥

तेजतत्व लाल रङ्गका, तिकोने आकृति वाला, तीक्ष्ण स्वादयुक्त, ऊपर प्रवाहित होने वाला, चमकीला और चार अङ्गुल परिमाण वाला होता है ॥ १७१ ॥

नीलं च वर्तुलाकारं स्वादाम्लं तिर्यगाश्रितम् ।
चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेऽष्टांगुलं स्मृतम् ॥१७२॥

वायुतत्व नीले रङ्गका, गोल आकृतिका, खट्टे स्वादवाला, तिरछी गतिवाला, चंचल और आठ अङ्गुल तक प्रवाह वाला होता है ॥ १७२ ॥

वर्णाकारे स्वादवाहे अव्यक्तं सर्वगामिनम् ।
मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु निष्फलम् ॥१७३॥

आकाशतत्व सभी लोगों को उसका रंग, आकार, स्वाद और गति अजेय होने के कारण जानने में सुलभ नहीं होता है। यह केवल मोक्ष देनेवाला होता है ॥१७३॥

पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् ।
हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ व्योममारुतौ ॥१७४॥

पृथ्वी और जल ये दोनों तत्व शुभ होते हैं। तेजतत्व मिश्रित (शुभ अशुभ दोनों) फल देता है। वायु और आकाश तत्व पुरुषों की हानि और मृत्यु कारक है ॥१७४॥

आपूर्वपश्चिमे पृथ्वी तेजश्च दक्षिणे तथा ।
वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो मध्ये कोणगतं नभः ॥१७५॥

पृथ्वीतत्व पूर्वदिशा से पश्चिम दिशा तक, दक्षिण दिशा में तेजतत्व, उत्तर में वायुतत्व और दिशाओं के मध्यकोण में आकाशतत्व रहता है ॥१७५॥

चन्द्रे पृथ्वीजले स्यातां सूर्येऽग्निर्वा यदा भवेत् ।
तदा सिद्धिर्न सन्देहः सौम्यासौम्येषु कर्मसु ॥१७६॥

चन्द्र स्वर में पृथ्वी या जलतत्व के उदित रहने पर निःसन्देह शुभ कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्य स्वर में अग्नितत्व उदित होने पर क्रूर कार्यों में निश्चित सिद्धि मिलती है ॥१७६॥

लाभः पृथ्वीकृतोऽह्नि स्यान्निशायां लाभकृज्जलम् ।
वह्नौ मृत्युःक्षयो वायुर्नभःस्थानंदहेत्क्वचित् ॥१७७॥

दिन में पृथ्वीतत्व का उदय होने पर लाभ होता है। जलतत्व का उदय रातमें लाभ कराता है। अग्नितत्व के उदय में मृत्यु, वायुतत्व के उदय में नाश और आकाशतत्व के उदय में स्थान का दाह होता है ॥१७७॥

जीवितव्ये जये लाभे कृष्यां च धनकर्मणि ।
मन्त्रार्थे युद्धप्रश्ने च गमनागमने तथा ॥१७८॥

जीवन के लिए जय, लाभ, खेती, धन संग्रह, मन्त्रार्थ ज्ञान, युद्ध विषयक प्रश्न, गमन-आगमन आदि कार्यों में पृथ्वीतत्व शुभ माना जाता है ॥१७८॥

आयाति वारुणे तत्त्वे शत्रुरस्ति शुभं क्षितौ ।
प्रयाति वायुतोऽन्यत्रहानिमृत्युनभोऽनलः ॥१७९॥

पृथ्वीतत्वमें 'शत्रुस्थिर है' जलतत्वमें 'शत्रु आरहा है' वायु तत्व में 'शत्रु कहीं दूसरी ओर जाता है, और अग्नितत्व में 'शत्रु नाश करने और मारने के लिये आता है' ऐसा समझना चाहिए ॥१७९॥

पृथिव्यां मूलचिन्तास्याज्जीवस्य जल वातयोः ।
तेजसा धातुचिन्तास्याच्छून्यमाकाशतो वदेत् ।१८०।

प्रश्न करते समय यदि पृथ्वी तत्व का उदय हो तो प्रश्न-

कर्ता को मूल चिन्ता है ऐसा समझे। यदि उस समय जल या वायुतत्व उदित हो तो प्रश्नकर्ताको प्राणी विषयक चिन्ता होती है। तेजतत्व उदित हो तो धातु चिन्ता और आकाशतत्व उदित होने पर कोई चिन्ता नहीं है ऐसा समझना चाहिये ॥१८०॥

पृथिव्यां बहुपादाः स्युर्द्विपदस्तोयवायुतः।
तेजस्येव चतुष्पादो नभसा पादवर्जितः ॥१८१॥

यदि प्रश्न के समय पृथ्वीतत्व का उदय हो तो प्रश्नकर्ता को दो से अधिक पाँववाले जीवोंकी चिन्ता रहती है। जल या वायुतत्व का उदय होनेपर मनुष्यकी चिन्ता, तेजतत्व के उदित रहने पर पशुओं की चिन्ता और आकाशतत्व उदित रहने पर बिना पाँव वाले जीवों की चिन्ता होती है ॥१८१॥

कुजो वह्नी रविः पृथ्वी सौरिरापः प्रकीर्तितः।
वायुस्थानस्थितो राहुर्दक्षरंध्रप्रवाहकः ॥१८२॥

सूर्य स्वर में के (दक्षिण पिंगला नाडी में के) अग्नि, पृथ्वी, जल, और वायुतत्वों में क्रमशः मंगल, सूर्य, शनि और राहु रहते हैं ॥१८२॥

जलं चन्द्रो बुधः पृथ्वी गुरुर्वातः सितोऽनलः।
वामनाड्यां स्थिताः सर्वे सर्वं कार्येषु निश्चिताः॥१८३।

चन्द्र स्वरमें उदित जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि तत्वोंमें क्रमशः चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र रहते हैं। उक्त नवों ग्रह सब कार्यों में सिद्धिदायक हैं ॥१८३॥

पृथ्वी बुधो जलविंदुः शुक्रो वह्नी रविः कुजः।
वायू राहुशनी व्योम गुरुदेव प्रकीर्त्तितः॥१८४॥

पृथ्वीतत्वसे बुध, जलतत्व से चन्द्र, अग्नि तत्व से रवि और मंगल, वायुतत्व से शनि और राहु तथा आकाश तत्वसे गुरु कहे गये हैं॥१८४॥

प्रवासप्रश्न आदित्ये यदि राहुर्गतोऽनिले।
तदासौ चलितो ज्ञेयः स्थानान्तरमपेक्षते॥१८५॥

यात्रा विषयक प्रश्न पूछे जाने के समय यदि सूर्य स्वर में के वायु तत्व में राहु हो तो यात्री एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहा है और दूसरे स्थान को जाना चाहता है ऐसा समझना चाहिये॥१८५॥

आयाति वारुणे तत्वे तत्रैवास्ति शुभं क्षितौ।
प्रवासी पवनेऽन्यत्र मृत्युरेवानले भवेत्॥१८६॥

यदि जलतत्व उदित हो तो यात्री आ रहा है ऐसा समझे पृथ्वी तत्वमें यात्री वहीं है ऐसा समझना चाहिये। वायुतत्व के उदयमें प्रवासी दूसरी जगह है ऐसा समझें और प्रश्नके समय अग्नितत्व उदित हो तो प्रवासी की मृत्यु हुई ऐसा समझना चाहिये॥१८६॥

पार्थिवे मूलविज्ञानं शुभं कार्यं जले तथा।
आग्नेयेधातुविज्ञानं व्योम्निशून्यंविनिर्दिशेत्।१८७

प्रश्न के समय यदि पृथ्वी तत्व उदित हो तो प्रश्नकर्ताका वृत्त आदि विषयक अभिप्राय होता है। इसी प्रकार जल तत्वके उदयमें प्रश्नकर्ता शुभ कार्यों के बारेमें जानना चाहता है। अग्नि तत्वमें धातुओं के बारे में और आकाश तत्व के उदयमें कुछ भी नहीं जानना चाहता है ऐसा समझना चाहिये ॥१८७॥

तुष्टिः पुष्टी रतिः क्रीडा जय हर्षौ धराजले।
तेजोवाय्वोश्च सुप्ताक्षो ज्वरकम्पः प्रवासिनः॥१८८॥

पृथ्वी और जल तत्व के उदयके समय प्रवासीके विषयमें यदि प्रश्न किया जाता है तो यह समझना चाहिये कि प्रवासी संतुष्ट, पुष्ट, विषयके आनन्द से युक्त, खेलोंमें आसक्त विजयी या हर्ष युक्त है। तेज या वायु तत्व में आलसी, ज्वर से युक्त अथवा दुःखित समझें ॥१८८॥

गतायुर्मृत्युराकाशे तत्त्वस्थाने प्रकीर्तिताः।
द्वादशैताः प्रयत्नेन ज्ञातव्या दैशिकैः सदा ॥१८९॥

आकाश तत्व के उदय के समय यदि प्रश्न हुआ हो तो प्रवासी की आयु समाप्त हुई है ऐसा समझे। उक्त प्रकार के बारहों प्रश्नों के उत्तर जो तत्वों के स्थानोंके वर्णन प्रसंगमें कहे गये हैं, ज्योतिषियों को प्रयत्नपूर्वक समझने चाहिये ॥१८९॥

पूर्वस्यां पश्चिमे याम्ये उत्तरस्यां यथाक्रमम्।
पृथिव्यानि भूतानि बलिष्ठानि विनिर्दिशेत्॥१९०॥

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज और वायु तत्व प्रबल होते हैं॥ १९०॥

शरीरउत्पत्ति—

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पंचभूतात्मको देहो ज्ञातव्यश्च वरानने ॥१६१॥

हे पार्वती ! यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच तत्वों से (महाभूतोंसे) बना हुआ है ॥१६१॥

अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोम चैव तु पञ्चमम् ।
पृथ्वी पंचगुणा प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१६२॥

हड्डी, मांस, खाल, नाडियाँ और रोम ये पृथ्वीके पाँच गुणोंके प्रतीक हैं । इस बातको वेदान्त भी प्रतिपादन करता है ॥१६२॥

शुक्रशोणितमज्जाश्च मूत्रं लालं च पञ्चमम् ।
आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१६३॥

जल तत्वके वीर्य, रक्त, मज्जा, सूत्र और लार ये पाँच गुण हैं ॥ १६३ ॥

क्षुधा तृषा तथा निद्रा क्रान्तिरालस्यमेव च ।
तेजः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१६४॥

तेज तत्व के भूख, प्यास, नींद, क्रान्ति और आलस्य ये पाँच गुण हैं ॥ १६४ ॥

धावनं चलनं ग्रन्थः संकोचनप्रसारणे ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१६५॥

वायु तत्व के दौड़ना, चलना ग्रन्थियुक्तहोना, सिकुड़ना फैलना ये पाँचगुण हैं ॥ १६५ ॥

रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पंञ्चमः।
नभसः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् ॥१९६

आकाश के प्रेम, द्वेष, लज्जा, भय और मोह ये पाँच गुण हैं ॥१९६॥

पृथ्व्याःपलानिपंचाशच्चत्वारिंशतितथाम्भसः।
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥१९७॥

देहमें पाँचो तत्वों का प्रमाण निम्नलिखित रूपसे होता है। पृथ्वी का पचास पल, जलका चालिस पल, तेजका तीस पल, वायुका बीस पल और आकाश का दश पल ॥१९७।

पृथिव्यां चिरकालेन लाभश्चापः क्षणाद्भवेत्।
जायते पवने स्वल्पःसिद्धोऽप्यग्नौ विनश्यति॥१९८॥

स्वरमें पृथ्वी तत्व के उदय में लाभ शीघ्र नहीं होता है। जलतत्वमें तत्क्षण लाभ होता है। वायुतत्वमें थोड़ा लाभ होता है और अग्नि तत्व में भया हुआ लाभ भी नष्ट हो जाता है॥१९८॥

पृथ्व्याः पंच ह्यपां वेदा त्रयस्तेजो द्विवायुतः।
नभस्येकगुणश्चैव तत्वज्ञानमिदं भवेत् ॥१९९॥

पृथ्वीमें पाँच, जलमें चार, तेजमें तीन, वायु में दो और आकाशमें एक गुण होता है। इस तत्वको प्रत्येक को समझना चाहिये ॥१९९॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिता विजीर्णा पतिता धरा।
ददाति सर्वकार्येषु अवस्थासदृशं फलम् ॥२००॥

फटी हुई, फूत्कार करनेवाली, जीर्ण और गिरि हुई पृथ्वी अवस्थाके अनुरूप फल सभी कार्यों में देती है ॥२००॥

धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठानुराधा श्रवणं तथा ।
अभिजिदुत्तराषाढा पृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥२०१॥

पृथ्वी तत्वके धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढ़ा ये सात नक्षत्र हैं ॥२०१॥

पूर्वाषाढा तथाश्लेषा मूलमार्द्रा च रेवती ।
उत्तराभाद्रपदा तोयतत्त्वं शतभिषक् प्रिये ॥२०२॥

हे पार्वति ! जलतत्वके पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा ये सात नक्षत्र हैं ॥२०२॥

भरणी कृत्तिका पुष्यो मघा पूर्वा च फाल्गुनी ।
पूर्वाभाद्रपदा स्वाती तेजस्तत्त्वमिति प्रिये ॥२०३॥

हे प्रिये ! तेजतत्वके भरणी, कृत्तिका, पुष्य मघा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और स्वाती ये सात नक्षत्र हैं ॥२०३॥

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौ हस्तश्चित्रे पुनर्वसु ।
अश्विनीमृगशीर्षे च वायुतत्त्वमुदाहृतम् ॥२०४॥

वायुतत्वके विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु अश्विनी और मृगशिरा ये सात नक्षत्र है ॥२०४॥

वहन्नाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं सिद्धमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः॥२०५॥

प्रवाहित नाडी की ओर बैठकर दूत शुभ वा अशुभ कार्योंको

यदि पूछता है तो वे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत बैठने से कार्य सिद्ध नहीं होते इसमें सन्देह नहीं ॥२०५॥

पूर्णोऽपि निर्गमश्वासे सुतत्त्वेऽपि न सिद्धिदः।
सूर्यश्चन्द्रोऽथवा नृणां संग्रहः सर्वसिद्धिदः ॥२०६॥

यदि पूर्णरूप से सूर्यस्वर प्रवाहित हो और उसमें शुभतत्व भी उदित हो, फिर भी उसमें पूछे हुए कार्य कदापि सिद्ध नहीं होते हैं। इसके विपरीत चन्द्रस्वर में पूछे गये कार्य अवश्य सिद्ध होते हैं ॥२०६॥

तत्त्वे रामो जयः प्राप्तः सुतत्त्वे च धनंजयः।
कौरवा निहताः सर्वे युद्धे तत्त्वविपर्ययात् ॥२०७॥

तत्त्वोंकी प्रबलताके कारण ही रामचन्द्रजी की विजय हुई इसी प्रकार शुभतत्त्वोंके द्वारा ही अर्जुनने युद्धमें सफलता प्राप्त की और तत्वों के अशुभ रहने के कारण कौरवोंकी हार हुई और वे मारे गये ॥२०७॥

जन्मान्तरीयसंस्कारात्प्रसादादथवा गुरोः।
केषाञ्चिज्ज्ञायते तत्त्ववासना विमलात्मनाम् ॥२०८॥

गुरुके प्रसाद से या पहले जन्म के संस्कार के कारण कुछ ही पवित्र हृदय वालोंको तत्वों के विषयमें जाननेकी इच्छा होती है ॥२०८॥

लं बीजं धरणीं ध्यायेच्चतुरस्त्रां सुपीतभाम्।
सुगन्धां स्वर्णवर्णाभां प्राप्नुयाद्देहलाघवम् ॥२०९॥

'लं' बीजसे सोनेके समान पीले चौकोन और सुगन्धयुक्त पृथ्वी तत्वका ध्यान करनेसे शरीरको लघुता (हलकापन) प्राप्त होता है ॥२०६॥

वं बीजं वारुणे ध्यायेत्तत्त्वमर्धशशिप्रभम् ।
क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वं जलमध्ये च मज्जनम् ॥२१०॥

'वं' बीजसे अर्ध चन्द्रमा की तरह प्रभा एवं आकृतिवाले जलतत्वका ध्यान करने वालेको भूख प्यास आदिको सहन करनेकी और जलके भीतर रहनेकी शक्ति प्राप्त होती है ।२१०।

रं बीजमग्निं ध्यायेत्त्रिकोणमरुणप्रभम् ।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥२११॥

'रं' बीजसे तिकोन आकृतिके लालरंगके, तेजतत्वके ध्यान से बहुत अन्न खानेकी, जल पीनेकी तथा घाम और आग सहन करनेकी शक्ति प्राप्त होती है ॥२११॥

यं बीजं पावनं ध्यायेद्वर्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद्गमनं तथा ॥२१२॥

'यं' बीजसे गोल आकृतिके कालेरंगके वायुतत्वके ध्यान से आकाश में भ्रमण करनेकी और पक्षियों की तरह उड़नेकी शक्ति प्राप्त होती है ॥२१२॥

हं बीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम् ।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम् ॥२१३॥

'हं' बीजसे अत्यन्त उज्वल, निराकार, आकाश तत्व के ध्यान से त्रिकालका ज्ञान होता है और अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ २१३ ॥

स्वरज्ञानी नरो यत्र धनं नास्ति ततः परम् ।
गम्यते स्वरज्ञानेन अनायासं फलं भवेत् ॥२१४॥

जहाँ पर स्वर ज्ञानी पुरुष हैं, वहाँ उससे अधिक श्रेष्ठधन दूसरा कुछ भी नहीं है। क्योंकि स्वरके ज्ञानसे अनायास ही सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं ॥ २१४ ॥

देवदेव महादेव महाज्ञानं स्वरोदयम् ।
त्रिकालविषयं चैव कथं भवति शंकर ॥२१५॥

देवी उवाच—

पार्वती ने कहा—हे देवोंके देव शंकरजी ! स्वर ज्ञान से भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालोंका ज्ञान कैसे होता है यह मुझसे कहिये ॥ २१५ ॥

शिव उवाच—

अर्थकालजयप्रश्नं शुभाशुभमिति त्रिधा ।
एतत्त्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवति सुन्दरि ॥२१६॥

शिवजीने कहा—हे सुन्दरि ! स्वर ज्ञान के बिना अर्थ, काल, जय आदि शुभ, अशुभ कार्योंका और तीनों कालोंका ज्ञान नहीं होता है ॥ २१६ ॥

तत्त्वे शुभाशुभं कार्यं तत्त्वे जयपराजयौ ।
तत्त्वे सुभिक्षदुर्भिक्षं तत्त्वं त्रिपदमुच्यते ॥२१७॥

तत्त्वोंमें ही शुभ और अशुभ कार्य, जय, पराजय, सुभिक्ष और दुर्भिक्ष होते हैं। इसलिये तत्त्वोंको त्रिकालका आधार माना जाता है॥ २१७॥

देवी उवाच—

देवदेव महादेव सर्वसंसारसागरे।
किं नाराणां परं मित्रं सर्वकार्यार्थसाधकम् ॥२१८॥

पार्वतीने कहा—हे देवोंके अधिदेव शंकरजी! इस सम्पूर्ण संसारसागरमें सब कार्यों को सिद्ध करनेवाला श्रेष्ठ मित्र मनुष्यों का कौन है?॥ २१८॥

शिव उवाच—

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव परं सखा।
प्राणतुल्यः परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने॥२१९॥

शंकरजीने कहा-हे सुमुखि! प्राण ही परम मित्र है। प्राण परम सखा है प्राणके सदृश श्रेष्ठ बन्धु कोई नहीं है॥२१९॥

देवी उवाच—

कथं प्राणस्थितो वायुर्देहः किं प्राणरूपकः।
तत्त्वेषु सञ्चरन्प्राणो ज्ञायते योगिभिः कथम्॥२२०॥

पार्वतीजीने पूछा—वायु प्राणोंमें कैसे रहता है? प्राणरूप ही देह क्यों है? तत्त्वों में संचार करनेवाले प्राणको योगी कैसे जानते हैं?॥ २२०॥

शिव उवाच—

कायानगरमध्यस्थो मारुतो रक्षपालकः।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलः॥२२१॥

शिवजीने कहा—देहरूप नगरमें रचक वायु है। श्वास लेते समय उसका परिमाण दस अंगुल और छोड़ते समय बारह अंगुल का होता है ॥ २२१ ॥

गमने तु चतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तु धावने।
मैथुने पंचषष्टिश्च शयने च शतांगुलम् ॥२२२॥

उस वायुका परिमाण चलते समय चौबीस, दौड़ते समय बयालिस, स्त्री प्रसंगमें पैंसठ और सोते समय सौ अंगुल का होता है ॥ २२२ ॥

प्राणस्य तु गतिर्देवि स्वभावाद् द्वादशांगुलम्।
भोजने वमने चैव गतिरष्टादशांगुलम् ॥२२३॥

हे देवि! स्वाभाविकप्राणकी गति या परिमाण बारह अङ्गुल और भोजन या वमनके समय अठारह अङ्गुलका होता है ॥२२३॥

एकांगुलं कृते न्यूने प्राणे निष्कामता मता।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात्कामशक्तिस्तृतीयके॥२२४॥

स्वाभाविक वायुकी गतिको यदि एक अङ्गुल योगाभ्यास से कम किया जाता है तो उससे निष्कामता, दो अंगुल कम करे तो आनन्द और तीन अंगुल कम करे तो कामशक्ति प्राप्त होती है ॥ २२४ ॥

वाचासिद्धिश्चतुर्थे च दूरदृष्टिस्तु पंचमे।
षष्ठे त्वाकाशगमनं चंडवेगश्च सप्तमे ॥२२५॥

चार अंगुल कम करें तो वाक्सिद्धि, पाँच अंगुलकी कमीसे

दूरदर्शिता, छः अंगुल कम करनेसे आकाशमें जानेकी शक्ति और सात अङ्गुलकी कमीसे प्रबल वेग प्राप्त होता है ॥ २२५ ॥

अष्टमे सिद्धयश्चैव नवमे निधयो नव।
दशमे दश मूर्तीश्च छाया नैकादशे भवेत् ॥२२६॥

यदि आठ अंगुल कम करें तो अष्टसिद्धि, नौ अंगुलकी कमीसे नौ निधियाँ, दस अंगुल कम करें तो दस मूर्तियाँ और ग्यारह अंगुलकी कमीसे छाया-राहित्य प्राप्त होता है ॥ २२६ ॥

द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिबेत्।
आनखाग्रप्राणपूर्णे कस्य भक्ष्यं न भोजनम् ॥२२७॥

बारह अङ्गुल कम करने से (पूर्णरूपसे वायु निरोधनसे) उसे हंस गति प्राप्त होकर वह गंगामृतका पान करता है। नखों के अग्र भागतक प्राणको शरीरमें भरनेमें उसे खाने पीने की आवश्यकता नहीं होती ॥ २२७ ॥

एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः।
जायते गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः ॥२२८॥

सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला यह प्राणविधि कहा गया है। यह गुरु वाक्यसे ही ज्ञात होता है। शास्त्र और विद्याका कोटिक्रम इसमें आवश्यक नहीं होता है ॥ २२८ ॥

प्रातश्चन्द्रः रविः सायं यदि दैवान्न लभ्यते।
मध्याह्नान्मध्यरात्राच्च परतस्तु प्रवर्तते ॥२२९॥

सुबह चन्द्र नाडी और शामको सूर्य नाडी यदि भाग्यवश प्राप्त नहीं हों तो ये दोपहर अथवा आधी रातको अवश्य मिलती हैं ॥ २२९ ॥

दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
वहन्नाड्यगतः पादः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२३०॥

चन्द्रस्वर दूर देशके युद्धमें और सूर्यस्वर निकट युद्धमें विजय प्राप्त कराता है । जिस ओर का स्वर चलता हो उसी ओर का पाँव आगे रख कर की हुई यात्रा सिद्धिदायक होती है ॥२३०॥

यात्रारम्भे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके ।
शुभकार्याणि सिद्ध्यन्ति चन्द्रचारेषु सर्वदा ॥२३१॥

चन्द्रस्वर यात्रारम्भ, विवाह, नगर प्रवेश आदि शुभ में सिद्धि देता है ॥ २३१ ॥

अयनतिथिदिनेशैःस्वीयतत्त्वेनयुक्तेयदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसाम् । स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्रस्वरेण प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके॥२३२

भाग्यसे यदि पुरुषोंके स्वरमें अयन, तिथि, वार आदिके स्वामी उदित हों तो उनके स्वरके स्तम्भनसे ही शत्रु सैन्य जीता जाता है और उनको वैकुण्ठमें भी विघ्न नहीं सताते हैं ॥ २३२ ॥

जीवं रक्ष जीवं रक्ष जीवाङ्गे परिधाय च ।
जीवो याति यो युद्धे जीवं जयति मेदिनीम्॥२३३॥

जो स्वर चलता हो उस ओर वस्त्र पहनकर "जीवं रक्ष" यह मन्त्र जो जपता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतता है ॥२३३

भूमौ जले च कर्त्तव्यं गमनं शान्तिकर्मसु ।
वह्नौ वायौ प्रदीप्तेसु खे पुनर्नोभयेष्वपि ॥२३४॥

पृथ्वी या जलतत्वमें शुभकार्योंके निमित्त यात्रा करें । तेज या वायु तत्वमें क्रूर कार्योंके लिये यात्रा करें । आकाश तत्वमें किसी प्रकारके कार्योंके लिये यात्रा न करें ॥ २३४ ॥

जीवेन शस्त्रं बध्नीयात् जीवेनैव विकाशयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ॥२३५॥

जिस ओरका स्वर प्रवाहित हो, उसी ओर शस्त्र धारण कर उसी ओरके हाथसे शस्त्रको पकड़कर चलनेसे युद्ध में विजय होती है ॥ २३५ ॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत वाहनम् ।
समुत्तरे पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२३६॥

प्राणको खींचकर दाहिना पाँव आगे रखकर अश्वादि वाहन पर चढ़नेसे मनुष्य की इच्छायें पूर्ण होती हैं ॥२३६॥

अपूर्णे शत्रुसामग्री पूर्णे वा स्वबलं तथा ।
कुरुते पूर्णतत्वस्थो जयत्यको वसुन्धराम् ॥२३७॥

शत्रु सेना शून्य स्वरकी ओर अपनी सेना पूर्ण स्वरकी ओर खड़ीकर यद्ध करनेवालोंको अवश्य विजय मिलती है ॥२३७॥

या नाड़ी वहते चांगे तस्यामेवाधिदेवता।
सम्मुखेऽपि दिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ॥२३८॥

जिस ओर का स्वर चलता हो, उसके देवताकी दिशाकी ओर उस ओरका पाँव आगे रखकर यात्रा करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २३८ ॥

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत्।
सर्पमुद्रा कृता येन तस्यसिद्धिर्न संशयः ॥२३९॥

पहले मुद्रा कर पश्चात् युद्ध करे। सर्प मुद्रा करनेसे सभी कार्योंमें सिद्धि मिलती है ॥ २३९ ॥

चन्द्रप्रवाहेऽप्यथ सूर्यवाहे, भटाः समायान्ति च योद्धुकामाः। समीरणस्तत्त्वविदां प्रतीतौ, या शून्यता सा प्रतिकार्यनाशम् ॥ २४० ॥

चन्द्र अथवा सूर्य स्वरमें योद्धा लोग युद्ध जब करते हैं, उस समय यदि उनके स्वरोंमें वायु तत्व पूर्ण उदित हो तो विजय और आकाश तत्व उदित हो तो पराजय प्राप्त करते हैं ॥ २४० ॥

यां दिशं वहते वायुर्युद्धे तद्दिशि दापयेत्।
जयत्येव न सन्देह शक्रोऽपि यदि चाग्रतः ॥२४१॥

जिस ओरके स्वरमें वायु तत्व उदित हो, उस ओर खड़ा होकर युद्ध करने वालेका पराजय इन्द्र भी नहीं कर सकता है ॥ २४१ ॥

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंगे प्राणमेव च ।
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्तंजयत्यैव पुरन्दरम् ॥२४२॥

जिस ओरकी नाड़ीमें वायुतत्व उदित हो, उस ओर के कान तक प्राण को खींचकर युद्ध करने वाला इन्द्र को भी जीतता है ॥ २४२ ॥

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णांगं योऽभिरिक्षति ।
न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ॥२४३॥

शत्रुओंके आघातोंसे अपने शरीरकी रक्षा करने वालेको शक्तिमान् शत्रु कभी नहीं हराता है ॥ २४३ ॥

अंगुष्ठतर्जनीवंशे पादांगुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले च कर्त्तव्या लक्षयोधृजयी भवेत् ॥२४४॥

वह शूर लाखों शत्रुओं को हराता है युद्ध के समय जिसके अंगूठे और तर्जनी के पोरमें और पाँव के अंगूठे में शब्द हो ॥ २४४ ॥

निशाकरे रवौ चारे मध्ये यस्य समीरणः ।
स्थितोरक्षेद्दिगन्तानि जयाकांक्षीगतःसदा ॥२४५॥

चन्द्र या सूर्य स्वरमें वायुत्त्व उदित रहने पर युद्धके लिए यात्रा करने वाला चारों दिशाओंकी रक्षा करता है ॥ २४५ ॥

श्वासप्रवेशकाले तु दूतो जल्पति वांछितम् ।
तस्यार्थःसिद्धिमायातिनिर्गमने नैवसुन्दरि ॥२४६॥

स्वास लेते समय दूत यदि इच्छित बातको कहता है तो उसका कार्य सिद्ध होता है और स्वास छोड़ते समय सिद्ध नहीं होता है ॥ २४६ ॥

लाभादीन्यपि कार्याणि पृष्ठानि कीर्तितानि च ।
जीवेविशति सिद्ध्यन्ति हानिर्निस्सरणे भवेत् ।२४७।

लाभ आदिके विषयमें पूछे या कहे गये कार्य (स्वास लेते समय) सिद्ध होते हैं । स्वास छोड़ते समय कार्य-हानि होती है ॥ २४७ ॥

नरे दक्षा स्वकीया च स्त्रियां वामा प्रशस्यते ।
कुम्भको युद्धकाले च तिस्रोनाड्यस्त्रयीं गतिः॥२४८॥

पुरुष का दक्षिण और स्त्रीका बायाँ स्वर उत्तम होता है । युद्धकार्यमे कुम्भक उत्तम होता है । इस प्रकार तीनों नाड़ियों की तीन गतियाँ हैं ॥ २४८ ॥

हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् ।
सोऽहं-हंसपदेनैव जीवो जयति सर्वदा ॥२४९॥

'ह' कार और 'स' कार भेदके ज्ञानके बिना स्वर ज्ञान कैसे हो सकता है ? 'सोऽहं, 'हंस' इनके ज्ञानसे ही प्राणी जय लाभ करता है ॥ २४९ ॥

शून्यांग पूरितं कृत्वा जीवांगे गोपयेज्जयम् ।
जीवांगं घातमाप्नोति शून्यांगं रक्षते सदा ॥२५०॥

शून्य अंगको पूर्णकर जीव के अंगकी रक्षा करने से विजय

होती है जीवांगको हानि होती है यदि शून्य रहा करता है ॥ २५० ॥

वामे वा यदि वा दक्षे यदि पृच्छति पृच्छकः ।
पूर्णो घातो न जायेत शून्ये घातंविनिर्दिशेत् ॥२५१॥

चन्द्र अथवा सूर्यस्वरकी पूर्णावस्थामें उस ओर आकर यदि कोई प्रश्न करे तो घात नहीं होता है और यदि शून्य स्वरमें पूछे तो घात होता है ॥ २५१ ॥

भूतत्त्वेनोदरे घातः पदस्थानेऽम्बुना भवेत् ।
उरुस्थानेऽग्नितत्त्वेन करस्थाने च वायुना ॥२५२॥

प्रश्न के समय पृथ्वी तत्व उदित हो तो पेटमें, जलतत्व हो तो पाँवमें, अग्नि तत्व हो तो जाँघोंमें, और वायु तत्व हो तो हाथमें चोट लगती है ॥ २५२ ॥

शिरसि व्योमतत्त्वे च ज्ञातव्यो घातनिर्णयः ।
एवं पंचविधो घातः स्वरशास्त्रे प्रकाशितम्॥२५३॥

आकाश तत्वके उदयमें मस्तकमें चोट लगती है। इस प्रकार पाँच प्रकारके आघातोंका निर्णय इस स्वर शास्त्रमें है ॥ २५३ ॥

युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् ।
यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तदा ॥२५४॥

चन्द्रस्वरमें राजा अपने राज्य में रहकर ही शत्रु नाश करता है। सूर्य स्वरमें युद्ध स्थलमें जाकर युद्धमें विजय प्राप्त करता है ॥ २५४ ॥

जयमध्ये तु सन्देहे नाड़ी मध्ये तु लक्षयेत्।
सुषुम्नायां गते प्राणे समरे शत्रुसंकटम् ॥२५५॥

यदि विजय में संदेह हो तो नाडी के विषय में सोचे। युद्ध में सुषुम्ना नाडी चलने पर संकट प्राप्त होते हैं ॥२५५॥

यस्या नाड्या भवेच्चारस्तां दिशं युधि संश्रयेत्।
तदासौ जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥२५६॥

जिस ओरका स्वर चलता हो, उस दिशाकी ओर मुँहकर या रहकर युद्ध करनेसे निस्सन्देह विजय प्राप्त होता है ॥२५६॥

यदि संग्रामकाले तु वामनाडी यदा वहेत्।
स्थायिनो विजयं विद्याद्रिपुवश्यादयोऽपि च॥२५७॥

यदि इडा नाडी प्रवाहित हो तो राज्य में होने वाले युद्ध में विजय प्राप्त होकर शत्रु वश होते हैं ॥ २५७ ॥

यदि संग्रामकाले तु सूर्यस्तु व्यावृत्तो वहेत्।
तदा यायिजयं विद्यात्सदेवासुरमानवे ॥२५८॥

युद्ध समय में सूर्य नाडी चलने पर युद्ध स्थलमें जानेवाले राजाको देव, असुर व मानव पर विजय प्राप्त होती है ॥२५८॥

रणे हरति शत्रुस्तं वामायां प्रविशेन्नरः।
स्थानं विषुवचारेण जयः सूर्येण धावता ॥२५९॥

चन्द्रस्वर में आक्रमण करने वाले को शत्रु हराते हैं सुषुम्ना में उसको स्थानकी प्राप्ति होती है। सूर्यस्वर में विजय मिलती है ।२५९

युद्धद्वये कृते प्रश्ने पूर्णस्य प्रथमे जयः।
रिक्ते चैव द्वितीयस्तु जयी भवति नान्यथा ॥२६०॥

पूर्ण स्वरके प्रवाह के समय युद्ध विषयक दो मनुष्योंके प्रश्न पूछने पर पहला विजयी और दूसरा पराभूत होता। शून्य स्वरमें प्रश्न किये जाने पर पहला पराभूत और दूसरा विजयी होता है ॥२६०॥

पूर्णनाडीगतः पृष्ठे शून्यांग च तदाग्रतः।
शून्यस्थाने कृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥२६१॥

पूर्ण नाडी के समय युद्धमें जानेसे शत्रु भागता है शून्य नाडी में जाने से शत्रु मुकाबला करता है। शून्य स्थान की ओर शत्रु रहने में शत्रु अवश्य ही मरता है ॥ २६१ ॥

वामचारे समं नाम यस्य तस्य जयो भवेत्।
पृच्छको दक्षिणे भागे विजयी विषमाक्षरः ॥२६२॥

चन्द्रस्वरमें बाईं ओर से आकर जयके या अन्य कार्य के विषयमें प्रश्न पूछे जाने पर उस प्रश्नके अक्षर यदि सम (२-४-६)हों तो विजय और विषम (१-३-५)हों तो पराजय होती है॥२६२॥

यदा पृच्छति चन्द्रस्य तदा संधानमादिशेत्।
पृच्छेद् यदा तु सूर्यस्य तदाजानीहि विग्रहम्॥२६३॥

चन्द्रस्वर में युद्ध के विषय में प्रश्न करने पर सन्धि और सूर्यस्वर में पूछने पर युद्ध का होना जानिये ॥ २६३ ॥

पार्थिवे च समं युद्धं सिद्धिर्भवति वारुणे।
युद्धे हि तेजसो भंगो मृत्युर्वायौ नभस्यपि ॥२६४॥

युद्ध का आरम्भ पृथ्वी तत्त्व में होने पर हार जीत बराबर होती है। जल तत्त्व में विजय, तेज तत्त्व में अंगभंग और वायु एवं आकाश तत्त्व में मृत्यु होती है॥ २६४॥

निमित्तात्प्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः ।
पृच्छाकाले तदा कुर्यादिदं यत्नेन बुद्धिमान् ॥२६५॥

किसी कारण से अथवा प्रमादसे प्रश्न के समय जो चन्द्र या सूर्यस्वर नहीं जानता वह निम्न प्रकार से कार्य करे ॥२६५॥

निश्चलां धारणां कृत्वा पुष्पं हस्तान्निपातयेत् ।
पूर्णांगे पुष्पपतनं वा शून्यं तत्परं भवेत् ॥२६६॥

एकाग्रचित्त होकर हाथ से फूलों को गिराने पर शरीर के जिस ओर फूल गिरे उस ओर का स्वर पूर्ण, और जिस ओर फूल न गिरे उस ओर के अङ्गको शून्य समझना चाहिये ॥२६६॥

तिष्ठन्नुपविशन्नपि प्राणमाकर्षयन्निजम् ।
मनोभंगमकुर्वाणः सर्वकार्येषु जीवति ॥२६७॥

खड़े होकर या बैठ कर प्राणायाम करते समय जिसको मनोभंग नहीं होने पाता, वह सभी कार्यों में सफल होता है ॥२६७॥

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
नशत्रुव्याधिचौराद्याःशून्यस्थान्नाशितुंक्षमाः॥२६८॥

शून्य अङ्ग में स्थित होने पर काल, भयंकर शस्त्र, सर्प, शत्रु, रोग, चोर आदि विपत्तियाँ मनुष्य को नष्ट नहीं करती हैं॥ २६८॥

जीवेन स्थापयेद्वायुं जीवेनारम्भयेत्पुनः ।
जीवेन क्रीडते नित्यं द्यूते जयति सर्वथा ॥२६९॥

जीव से वायु की स्थापना करे और प्रारम्भ करे। जीवके साथ जो क्रीडा करता है, वह जूए में निश्चित जीतता है ॥२६९॥

स्वरज्ञानबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इह लोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ॥२७०॥

स्वर बलके समान अन्य कोटियों (प्रकारों)का बल निष्फल है। यहाँ और स्वर्ग में स्वर ज्ञानी सर्वदा प्रबल होता है ॥२७०॥

दशशतायुत लक्षं दशाधिकबलं क्वचित् ।
दशाक्रतु सुरेन्द्राणां बलकोटिगुणं भवेत् ॥२७१॥

स्वर बलसे राजा को हजार, दस हजार या लाख वीरों का बल प्राप्त होता है। इन्द्रादि देवों को बल इससे कोटि गुणित होता ॥ २७१ ॥

देवी उवाच—

परस्परं मनुष्याणां युद्धे प्रोक्तो जयस्त्वया ।
यमयुद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ॥२७२॥

पार्वतीजी ने कहाः-हे शिवजी ! आपने मनुष्योंके युद्धोंके जय के विषय में कहा किन्तु यम के साथ होनेवाले युद्ध में जय कैसे मिलेगा ? ॥ २७२ ॥

शिव उवाच—

ध्यायेद्देवं स्थिरो जीवं जुहूयाज्जीवसंगमे ।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा ॥२७३॥

शिवजी ने कहाः—एकाग्रचित होकर भगवान् का ध्यान कर जीव संगममें अर्थात् कुम्भक में जीवका होम करने से उसको इष्टसिद्धि, जय आदि महालाभ प्राप्त होते हैं ॥ २७३ ॥

निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं निराकारं ज्ञानं भवतितत्त्वणात् ॥२७४॥

निराकार ईश्वर से ही इस संसार की सृष्टि हुई है । ईश्वर विषयक ज्ञानके द्वारा यह साकार संसार निराकार मालूम होता है ।

देवी उवाच—

नर-युद्धं यम-युद्धं त्वया प्रोक्तं महेश्वर ।
इदानीं देवदेवानां वशीकरणकं वद ॥२७५॥

देवी ने कहाः--आपने मानव युद्ध और यम युद्ध कहा । किन्तु अब देवीदेवताओंको वशमें करनेका उपाय कहिये ॥२७५॥

शिव उवाच—

चन्द्रं सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमंडले ।
आजन्मवशगा रामा कथितेयं तपोधनैः ॥२७६॥

शिवजीने कहा—स्त्रीके चन्द्रस्वरको पुरुषके सूर्यस्वरसे खींचकर जीवमण्डलमें रखनेसे जन्मभर स्त्री वश होती है ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥ २७६ ॥

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो बालाजीवान्तकारकः ॥२७७॥

जो स्त्री को अपना जीवस्वर (इडा या पिंगला नाडी) देकर

उसका जीवस्वर लेता है और उसे जीवस्थानमें रखता है तो स्त्री का जीव उसके वशमें रहता है ॥ २७७ ॥

रात्र्यन्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मजीवं पिबेद्यस्तु बालाप्राणहरो नरः ॥२७८॥

रात्रिके अन्तमें सोई हुई स्त्रीके ब्रह्म जीव (सुषुम्ना स्वर) को जो पीता है उसको स्त्री वश होती है ॥ २७८ ॥

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन्काले गते सति ।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी ॥२७९॥

सुषुम्ना के समय के उपरान्त अष्टाक्षर मन्त्रको जपकर स्त्री को जो व्यक्ति अपना चन्द्रस्वर देता है, वह स्त्री को मोहित करता है ॥ २७९ ॥

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगनेऽपि वा ।
यः सूर्येण पिबेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः ॥२८०॥

सोते समय या प्रसंग के समय स्त्री के चन्द्रस्वर को सूर्यस्वर से पीने वाला मनुष्य साक्षात् कामदेव होता है ॥ २८० ॥

शिवं आलिंग्यते शक्त्या प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा ।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोहयेत्कामिनी शतम् ॥२८१॥

पुरुष का सूर्यस्वर और स्त्री का चन्द्रस्वर प्रसंग के समय एक होजाने से या स्त्री के सूर्यस्वर में अपना चन्द्रस्वर मिलाने से सौ स्त्रियों को भी वह पुरुष मोहित करता है ॥ २८१ ॥

सप्त नव त्रयः पञ्च वारान् संगस्तु सूर्यभे ।
चन्द्रेद्वित्तुर्थषट्कृत्वावश्याभवतिकामिनी ॥२८२॥

स्त्री के सूर्यस्वर में अपने चन्द्रस्वर को मिलाकर विषम समय में और स्त्री के चन्द्रस्वर में अपने सूर्यस्वर को मिलाकर सम समय में जो गमन करता है, तो स्त्री उसके वश होती है ॥२८२॥

सूर्यचन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याधरोष्ठयोः ।
महापद्मे मुखं स्पृष्ट्वा वारं वारमिदं चरेत् ॥२८३॥

सर्प की तरह सूर्य या चन्द्रस्वर को खींचकर बारबार चूमने से स्त्री वश होती है ॥ २८३ ॥

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निद्रावशं गता ।
पश्चाज्जागर्ति वेलायांचोष्यते गलचक्षुषोः ॥२८४॥

स्त्री के सोते समय तक चुम्बन करना और जागने पर उसके गले को और नेत्रोंको चूमना उसको वशमें कराता है ॥२८४॥

अनेन विधिना कामी वशयेत्सर्वकामिनीः ।
इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरि ॥२८५॥

हे पार्वती ! इस विधि से कामियों को स्त्रियों को वशमें करना चाहिये। यह वशीकरण किसी को नहीं कहना चाहिये ऐसी मेरी आज्ञा है ॥ २८५ ॥

॥ इति वशीकरणम् ॥

गर्भ प्रकरणम् ।

ऋतुकालभवा नारी पंचमेऽह्नि यदा भवेत् ।
सूर्यचन्द्रमसोर्योगं सेवनात्पुत्रसंभवः ॥२८६॥

ऋतु काल के पाँचवें दिन स्त्री के चन्द्रस्वर में और पति के सूर्यस्वर में गमन करने से पुत्र की प्राप्ति होती है ॥२८६॥

शंखबल्ली गवां दुग्धं पृथिव्यापो वहेद्यदा ।
भर्तु रेव वदेद्वाक्यं गर्भं देहि त्रिभिर्वचः ॥२८७॥

ऋतु स्नान के बाद पृथ्वी या जलतत्व के उदय में शंखबल्ली जड़ी गौ के दूध में मिलाकर पीने के बाद पति से संभोग की प्रार्थना तीन बार करनी चाहिये ॥ २८७ ॥

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ।
रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥२८८॥

ऋतुस्नान के बाद शंखबल्ली पीकर समागम करने से रूपलावण्ययुक्त पराक्रमी पुत्र होता है २८८ ॥

सुषुम्ना सूर्यवाहेन ऋतुदाने तु योजयेत् ।
अंगहीनः पुमान्यस्तु जायते त्रासविग्रहः ॥२८९॥

सूर्यस्वर के बाद सुषुम्ना स्वर में गमन करने से अङ्गरहित कुरूप पुत्र होता है ॥ २८९ ॥

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्नि तत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमाप्नुयात् ॥२९०॥

ऋतुस्नान के बाद विषम दिनों में, पति के सूर्यस्वर में और स्त्री के अग्नितत्त्वयुक्त चन्द्रस्वर में दिन या रात्रिमें भोग करने से वन्ध्या स्त्री को भी पुत्र होता है ॥ २६० ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां स्त्रीणां चैव सुधाकरः ।
उभयोः संगमे प्राप्ते वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥२६१॥

ऋतु के आरंभ में पति के सूर्य और स्त्री के चन्द्रस्वर में भोग करने से वन्ध्या को भी पुत्र होता है ॥ २६१ ॥

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते च सुधाकरः ।
अनेन क्रमयोगेन नादत्त दैवदारुकम् ॥२६२॥

भोग के प्रारंभ में पति का सूर्यस्वर और भोग के अन्त में चन्द्रस्वर चलने पर ऐसे महायोग में भाग्यहीन का छोड़कर अन्य लोगों को पुत्रप्राप्ति होती है ॥ २६२ ॥

चन्द्रनाड़ी यदा प्रश्ने गर्भे कन्या तदा भवेत् ।
सूर्यो भवेत्तदा पुत्रो द्वयोर्गर्भो विहन्यते ॥२६३॥

सन्तति के विषय में प्रश्न करते समय यदि चन्द्रस्वर प्रवाहित हो तो कन्या, सूर्यस्वर हो तो पुत्र और सुषुम्ना चलती हो तो गर्भनाश होगा यह समझना चाहिये ॥ २६३ ॥

पृथिव्यां पुत्री जले पुत्रः कन्यका तु प्रभंजने ।
तेजसि गर्भपातःस्यान्नभस्यपि नपुंसकः ॥२६४॥

प्रश्न करते समय पृथ्वीतत्त्व उदित हो तो कन्या, जलतत्त्व

हो तो पुत्र, वायुतत्व में कन्या, अग्नितत्व में गर्भनाश और आकाश तत्व में नपुंसक होता है ॥ २६४ ॥

चन्द्रे स्त्री पुरुषः सूर्ये मध्यमार्गे नपुंसकः ।
गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णे पुत्रः प्रजायते ॥२६५॥

प्रश्न के समय चन्द्रस्वर हो तो कन्या सूर्यस्वर हो तो पुत्र और सुषुम्ना हो तो नपुंसक होता है । पूर्णाङ्ग की ओर स्थित होकर प्रश्न करने पर पुत्र होता है ॥ २६५ ॥

शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे ।
तत्त्ववित्स विजानीयात्कथितं तत्तु सुन्दरि ॥२६६॥

शून्यस्वर में प्रश्न करनेपर शून्य (अभाव), दो स्वरों में युग्म, मिश्रित स्वरों में गर्भ नाश होता है, ऐसा स्वर-ज्ञाता कहते हैं ॥ २६६ ॥

गर्भाधानं मारुते स्याच्च दुःखी दिक्षु ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः । गर्भस्रावः स्वल्पजीवश्च वह्नौ भोगी भव्यः पार्थिवेनार्थयुक्तः ॥२६७॥

वायुतत्व में गर्भाधान होने से पुत्र दुःखी, जलतत्व में ख्याति और सुख युक्त, तेजतत्व में गर्भ नाश या अल्पायु, पृथ्वी तत्व में भोगी, सम्पत्तिशाली और बलवान् पुत्र होता है ॥२६७॥

धनवान् सौख्ययुक्तश्च भोगवानर्थसंस्थितिः ।
स्यान्नित्यंवारुणेतत्त्वे व्योम्निगर्भो विनश्यति॥२६८॥

जलतत्त्व में गर्भाधान होने से पुत्र धनवान्, सुखी, भोगी और भाग्यवान् होता है। आकाशतत्त्व में गर्भ-नाश होता है॥ २९८॥

माहेन्द्रे सुसुतोत्पत्तिर्वारुणे दुहिता भवेत्।
शेषेषु गर्भहानिः स्याज्जातमात्रस्य वा मृतिः॥२९९॥

पृथ्वीतत्त्व में उत्तम पुत्र, जलतत्त्व में कन्या और अन्य तत्त्वों में गर्भनाश होता है या उत्पन्न होकर नष्ट होता है॥२९९॥

रविमध्यगतश्चन्द्रश्चन्द्रमध्यगतो रविः।
ज्ञातव्यं गुरुतः शीघ्रं न वेदैः शास्त्रकोटिभिः॥३००॥

सूर्यस्वर में चन्द्रस्वर या चन्द्रस्वर में सूर्यस्वर चलनेपर इसका फल गुरु से ही पूछना चाहिये। गुरु के बिना वेद शास्त्र आदि इसको नहीं कह सकते हैं॥ ३००॥

॥ गर्भप्रकरणं समाप्तम्॥

संवत्सरफलम्।

चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदि प्रातस्तत्त्वविभेदतः।
पश्येद्विचक्षणो योगी दक्षिणे चोत्तरायणे॥३०१॥

बुद्धिमान् योगी चैत्र शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को प्रातःकाल तत्त्वों के भेद से उत्तरायण और दक्षिणायन के विषय में विचार करें॥ ३०१॥

चन्द्रोदयस्य वेलायां वहमानोऽथ तत्त्वतः।
पृथिव्यापस्तथा वायुः सुभिक्षं सर्वसस्यजम्॥३०२॥

उस दिन सुबह चन्द्रस्वर में पृथ्वी, जल या वायुतत्व उदित हो तो उस वर्ष बहुत अन्न उत्पन्न होता है ॥ ३०२ ॥

तजोऽग्योम्नोर्भयं घोरं दुर्भिक्षं कालतत्त्वतः ।
एवं तत्त्वफलं ज्ञेयं वर्षे मासे दिनेष्वपि ॥३०३॥

यदि अग्नि या आकाशतत्व उस समय उदित हो तो भयंकर संकट और दुर्भिक्ष होता है। इस प्रकार वर्ष, मास और दिन के फल तत्वों से जानने चाहियें ॥ ३०३ ॥

मध्यमा भवति क्रूरा दुष्टा सर्वेषु कर्मसु ।
देशभंग महारोगः क्लेशकष्टादि दुःखदा ॥३०४॥

सुषुम्ना नाडी सभी कार्योंमें क्रूर है। उसके प्रवाह में कार्य करने से देश नाश, महारोग, दुःख, कष्ट आदि होते हैं ॥३०४॥

मेषसंक्रांति वेलायां स्वरभेदं विचारयेत् ।
संवत्सरफलं ब्रूयाल्लोकानां तत्त्वचिन्तकः ॥३०५॥

तत्व को जाननेवाले मेषसंक्रान्ति के समय में स्वरभेद का विचार करें और वर्षफल भी उसी समय कहें ॥ ३०५ ।

पृथिव्यादिकतत्त्वेन दिनमासाब्दजं फलम् ।
शोभनं च यथा दुष्टं व्योममारुतवह्निभिः ॥३०६॥

पृथ्वी आदि तत्वों से दिन, मास और वर्षफल का विचार करें। उस समय पृथ्वी या जलतत्व उदित हो तो फल शुभ और अग्नि, वायु या आकाशतत्व उदित हो तो अशुभ फल होते हैं ॥ ३०६ ॥

सुभिक्षं राष्ट्रवृद्धिःस्याद् बहुसस्या वसुन्धरा।
बहुवृष्टिस्तथा सौख्यं पृथ्वीतत्त्वं वहेद्यदि ॥३०७॥

पृथ्वीतत्त्व उदित हो तो उस वर्ष राष्ट्रवृद्धि, सुभिक्ष, उत्तम कृषि, बहुत वृष्टि और सुख उत्पन्न होते हैं ॥ ३०७ ॥

अतिवृष्टिः सुभिक्षं स्यादारोग्यं सौख्यमेव च।
बहुसस्या तथा पृथ्वी अप्तत्त्वं वै वहेद् यदि ॥३०८॥

जलतत्त्व में अतिवृष्टि, सुभिक्ष, आरोग्य, सौख्य, धान्य की प्रचुरता आदि होते हैं ॥ ३०८ ॥

दुर्भिक्षं राष्ट्रभंगः स्यादुत्पत्तिश्च विनश्यति।
अल्पादल्पतरा वृष्टिरग्नितत्त्वं वहेद् यदि ॥३०९॥

तेज तत्वों में दुर्भिक्ष, राष्ट्रनाश, धान्य नाश तथा बहुत-कम वृष्टि होती है ॥ ३०९ ॥

उत्पातोपद्रवो भीतिरल्पा वृष्टिः स्युरीतयः।
मेषसंक्रान्तिवेलायां वायुतत्त्वं वहेद् यदि ॥३१०॥

मेष संक्रान्ति के समय वायुतत्व उदित रहने से उत्पात उपद्रव, भय तथा थोड़ी वृष्टि होती है ॥ ३१० ॥

मेषसंक्रान्तिवेलायां व्योमतत्त्वं वहेद् यदि।
तत्रापि शून्यता ज्ञेया सस्यादीनां सुखस्य च॥३११॥

उस समय आकाश तत्व हो तो उस वर्ष सुख, धान्य आदि का अभाव होता है ॥ ३११ ॥

पूर्णप्रवेशने श्वासे सस्यं तत्त्वेन सिद्ध्यति।
सूर्यचन्द्रेऽन्यथा भूते संग्रहः सर्वसिद्धिदः ॥३१२॥

पूर्ण श्वासों को भीतर खींचने पर उसमें के तत्वों द्वारा सस्यों का निर्माण होता है। उस समय सूर्य या चन्द्र स्वर उलटा चलता हो तो सस्य (धान्य) का संग्रह सिद्धिदायक होता है॥ ३१२॥

विषमे वह्नितत्त्वं स्याज्ज्ञायते केवलं नभः।
तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहो द्विमासे च महर्घता ॥३१३॥

विषम (सूर्य) स्वर में तेज तत्व उदित हो किन्तु आकाश तत्व भी उदित मालूम हो तो अन्न संग्रह करना उत्तम होता है। क्योंकि दो महीनों में महँगी बढ़ जाती है॥३१३॥

रवौ संक्रमते नाड़ी चन्द्रमन्ते प्रसर्पिता।
खानिले वह्नियोगेन रौरवं जगतीतले ॥३१४॥

रातको नाडी संक्रमण के बाद सूर्य स्वर और प्रातःकाल चन्द्र स्वर यदि प्रवाहित हो और उनमें अग्नि वायु या आकाश तत्व उदित हो तो अनेक अनर्थ होते हैं और पृथ्वी पर ही रौरव नरक का दृश्य दिखाई देता है॥ ३१४॥

संवत्सरफलम् समाप्तम्।

रोगप्रकरणम्।

महीतत्त्वे स्वरोगश्च जले च जलमातृतः।
तेजसि खेटवाटीस्थ शाकिनीपितृदोषतः ॥३१५॥

प्रश्न करते समय यदि पृथ्वी तत्व उदित हो तो पूर्व जन्म के पाप के द्वारा भया हुआ रोग, जल तत्व हो तो जल मातृका रोग, अग्नि तत्व हो तो ग्राम या पहाड़ों में वास करनेवाली शाकिनी का या पितरोंका दोष समझना चाहिये ॥ ३१५ ॥

अब रोगप्रकरण कहते हैं—

आदौ शून्यगतो दूतः पश्चात्पूर्णे विशेद्यदि ।
मूर्छितोऽपि ध्रुवं जीवद्यदर्थं प्रतिपृच्छति ॥३१६॥

पृच्छक पहले शून्य स्वरकी ओर बैठे और बाद में पूर्ण स्वर को ओर बैठकर, यदि रोगीके बारेमें प्रश्न करे तो मूर्छित रोगी अवश्य जीवित हो जाता है ॥ ३१६ ॥

यस्मिन्नंगे स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति ।
तदा जीवित जीवोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः ॥३१७॥

पूर्ण स्वर की ओर बैठकर यदि कोई रोगी के बारे में प्रश्न करता है या वह स्वयं रोगी है तो वह अनेक रोगों से ग्रसित रहने पर भी मर नहीं सकता ॥ ३१७ ॥

दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत् ।
तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रे समफलं भवेत्॥३१८॥

सूर्य स्वर चलते समय प्रश्न करने वाला यदि कोई भयानक बात कहे तो रोगी जीवित रहता है। चन्द्रस्वर में फल समान होता है ॥ ३१८ ॥

जीवाकारं च वा धृत्वा जीवाकारं विलोक्य च ।
जीवस्थो जीवितप्रश्ने तस्य स्याज्जीवितं फलम्॥३१९॥

जीव के आकारको धारण कर जीव के स्वरूप को देखकर और जीव में स्थित प्रश्नकर्ता को जीवन प्राप्त होता है ।।३१९।।

वामाचारे तथा दक्षे प्रवेशे यत्र वाहने ।
तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥३२०॥

सूर्य या चन्द्र स्वर के अन्दर प्रविष्ट होते समय जीवों की ओर बैठकर प्रश्न कर्ता के प्रश्न करने से रोगी अवश्य अच्छा होता है ॥ ३२० ॥

प्रश्ने चाधः स्थितो जीवो नूनं जीवो हि जीविते ।
ऊर्ध्वचारस्थितो जीवो जीवो यातियमालयम्॥३२१॥

जीवांग से नीचे खड़ा होकर प्रश्न करने से रोगी जीवित और ऊपर की ओर से प्रश्न करने से मृत समझना चाहिये ॥३२१॥

विपरीताक्षरप्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि ।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदये सति ॥३२२॥

प्रश्न कर्ता के शून्य नाडी की ओर बैठ कर विपरीत अक्षरों का विषम नाडी के प्रवाह में प्रश्न करने से फल उल्टा होता है ॥ ३२२ ॥

चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने तु पृच्छकः ।
तदा प्राणवायुक्तोऽसौ यदि वैद्यशतैर्वृतः ॥३२३॥

चन्द्र स्थानमें प्राण हो और प्रश्न कर्ता सूर्य स्थान की ओर बैठकर प्रश्न करता है तो रोगी सैकड़ों वैद्यों से घिरा होने पर भी जीवित नहीं रहता है ॥ ३२३ ॥

पिंगलायां स्थितो जीवः वामे दूतस्तु पृच्छति ।
तदाऽपि म्रियते रोगी यदि त्राता महेश्वरः ॥३२४॥

यदि प्रश्नों को पूछनेवाला बाँयी ओर बैठकर प्रश्न करे और उस समय सूर्य स्वर चलता हो तो शिवजी के बचाने पर भी रोगी मरता है ॥ ३२४ ॥

एकस्य भूतस्य विपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् ॥ तयोर्द्वयोर्बन्धुसुहृद्विपत्तिः पक्षद्वये व्यत्ययतो मृतिः स्यात् ॥३२५॥

एक तत्वकी विपरीत दशा में रोगों का आक्रमण, दो की विपरीत दशामें बन्धु, सुहृत आदिका वियोग और एक मास तक स्वर विपरीत दशामें होने से मृत्यु होती है ॥ ३२५ ॥

रोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ कालप्रकरणम्

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ।
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ॥३२६॥

अब काल प्रकरण कहते हैं ।

पण्डित लोगों को मास, पक्ष, वर्ष आदि के प्रारम्भ में क्रमानुसार वायुके प्रवाह को जानकर मृत्युकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ ३२६ ॥

पंचभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिञ्चितम् ।
रक्षयेत्सूर्यवातेन प्राणजीवः स्थिरो भवेत् ॥३२७॥

शरीररूप पंचमहाभूतात्मक दीप श्वास रूप शिव रूप-तेलसे सिंचित और सूर्य (स्वर) रूप वायुके रक्षित होने पर उसमें प्राण स्थिर होता है॥ ३२७॥

मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते यदि।
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वंचिते॥३२८॥

दिन भर प्राणायाम के द्वारा सूर्य स्वर को रोक कर सूर्यास्त के समय उसको छोड़ने का अभ्यास करनेवाला दीर्घ-जीवी होता है॥ ३२८॥

गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिंचयेत्।
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशि संश्रयात्॥३२९॥

इस प्रकार योगाभ्यास करने वालों के शरीररूप कमलों को आकाश से चन्द्र अमृत से सींचता है और योगी अमर होते हैं॥ ३२९॥

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवावायोर्दिवाकरः।
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः॥३३०॥

दिनमें सूर्य स्वर को और रातमें चन्द्र स्वर को रोकने का अभ्यास करने वाला अवश्य योगी होता है॥ ३३०॥

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः।
तदा तस्य भवेन्मृत्युः सम्पूर्णे वत्सरत्रये॥३३१॥

दिन रात जिसका एकही स्वर चलता है, उसकी मृत्यु तीन सालके बाद होती है॥ ३३१॥

अहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः।
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥३३२॥

दो अहोरात्र (दिनरात) जिसकी पिंगला नाडी चलती रहे उसकी आयु दो वर्ष की होती है ऐसा तत्वके विद्वान् कहते हैं ॥ ३३२ ॥

त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः।
तदा संवत्सरायुस्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३३३॥

तीन अहोरात्र जिसका एक ही स्वर चले, उसकी मृत्यु एक सालके बाद होती है ऐसा पण्डित कहते हैं ॥ ३३३ ॥

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम्।
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यन्तरे भवेत्॥३३४॥

रातमें चन्द्र स्वर और दिनमें सूर्य स्वर लगातार चले तो छः महीनों के अन्दर मृत्यु होती है ॥ ३३४ ॥

लक्ष्यं लक्षितलक्षणेन सलिले भानुर्यदा दृश्यते।
क्षीणो दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरः षट्त्रिद्विमासैकतः ॥
मध्ये छिद्रमिदं भवेद्दशदिनं धूमाकुलं तद्दिने।
सर्वज्ञैरपि भाषितं मुनिवरैरायुः प्रमाणं स्फुटम्॥३३५॥

कांसे के पात्र में जल भरकर उसमें दिखाई देनेवाला सूर्य-का प्रतिबिम्ब दक्षिण दिशा की ओर क्षीण दिखाई दे तो छः महिनों में, पश्चिममें क्षीण दिखाई दे तो तीन महिनों में, उत्तरमें

क्षीण दिखाई दे तो दो महीनों में, पूर्वमें क्षीण दिखाई दे तो एक महीनेमें, उस बिम्बमें छेद दिखाई देने से दस दिनोंमें और धूएँसे ढका दिखाई देने से उसी दिन मृत्यु होती है, ऐसा सर्वज्ञोंने कहा है ॥ ३३५ ॥

दूतः कृष्णकषायकृष्णवसनो दन्तक्षतो मुण्डितः।
तैलाभ्यक्तशरीररज्जुककरो दीनश्च पूर्णोत्तरः॥
भस्मांगारकपालपाशमुशलीसूर्योऽस्तमायाति यः।
कालीशून्यपदस्थितो गदयुतः कालानलास्यावृतः॥

अब दूत के लक्षण कहते हैं।

रोगीके बारेमें पूछने के लिये आया हुआ दूत लाल, गेरुआ और काले रंगका वस्त्र यदि पहना हुआ, और टूटे हुए दाँतों वाला, मुण्डन किया हुआ तेल लगाकर और रस्सी लिये हुये आया हुआ, पूर्ण उत्तर देने वाला और भस्म को लगाकर और शर, पाश, मूसल लेकर आया हुआ सूर्यास्त के समय शून्य अंगकी ओर बैठने से समझना चाहिये कि रोगी कालसे घिरा हुआ है ॥ ३३६ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पूरुषोत्तमः।
अकस्मादिन्द्रियोत्पातः सन्निपाताग्रलक्षणम्॥ ३३७॥

जिसका चित्त एकदम व्याकुल हो, अकस्मात् स्वस्थ हो जाय और एकाएक इन्द्रियों का उत्पात हो तो उस व्यक्ति को सन्निपात का प्रारम्भ हुआ है ऐसा समझना चाहिये ॥ ३३७॥

शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतिर्विकृता भवेत्।
तदरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥३३८॥

जिसका शरीर शीतल और स्वभाव विकृत हुआ हो उसके इस प्रकारके अरिष्टको मैं विस्तार से कहता हूँ॥ ३३८ ॥

दुष्टशब्देषु रमते शुद्धशब्देषु चाप्यति।
पश्चात्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥३३९॥

जिसे खराब शब्द अच्छा और अच्छा शब्द खराब प्रतीत होता है उसको पश्चात्ताप होकर मृत्यु होती है॥ ३३९ ॥

हुँकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः।
महावैद्यो भवेत्यस्य तस्य मृत्युर्भवेद्ध्रुवम् ॥३४०॥

जिसका हुँकार शीतल और फूत्कार अग्नि के समान गरम है, उसकी मृत्यु बहुत बड़े वैद्य की रक्षामें भी अवश्य होती है॥ ३४० ॥

जिह्वा विष्णुपदं ध्रुवं सुरपदं संमातृकामण्डल—
मेतान्येवमरुन्धतीममृतगुं शुक्रं ध्रुवं वा क्षणम्॥
एतेष्वेकमपि स्फुटं न पुरुषः पश्येत्पुरः प्रेषितः।
सोऽवश्यंविशतीहकालवदनं संवत्सरादूर्ध्वतः॥३४१॥

जिसक ।जीभ, आकाश, ध्रुव, देवों का मार्ग, मातृमण्डल, अरुन्धति, चन्द्र, शुक्र और अगस्त्य इनमेंसे एक भी यदि न दिखलाई दे तो उसकी मृत्यु निश्चित समझनी चाहिये।३४१।

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्नेः शीतांशुमालिनः ।
दृष्ट्वैकादशमासायुर्नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥३४२॥

जिसको चन्द्र और सूर्यकी प्रभा न दिखाई दे और अग्नि तेज विरहित दिखाई देता है, वह ग्यारह महिनों में मरता है ॥ ३४२ ॥

वाप्यां पुरीषमूत्राणि सुवर्णं रजतं तथा ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति ॥३४३॥

स्वप्न में या जागृतिमें तालावमें मलमूत्र या सोना चाँदी जो देखता है, उसकी आयु दस महीनों की होती है ॥ ३४३ ॥

क्वचित्पश्यति यो दीपं सुवर्णं च कषान्वितम् ।
विरूपाणि च भूतानि नवमासान्न जीवति ॥३४४॥

जिसको कभी कभी सोना और दीप काले प्रतीत हों और सभी प्राणी खराब दिखाई दें, उसकी नौ महिनोंमें मृत्यु होती है ॥ ३४४ ।

स्थूलांगोऽपिकृशःकृशोऽपिसहसा स्थूलत्वमालम्भते ।
प्राप्तो वा कनकप्रभा यदि भवेत्क्रूरोऽपिकृष्णच्छविः॥
शूरोभीरुसुधीरधर्मनिपुणः शांतोविकारीपुमान्नित्येव
प्रकृतिः प्रयाति चलनं मासाष्टकं जीवति ॥३४५॥

यदि मोटा अकस्मात् दुबला हो या दुबला एकदम मोटा हो क्रूर एवं कृष्ण वर्ण वाला सोने की तरह उज्ज्वल हो, शूर कायर, धार्मिक अधार्मिक, शान्त चञ्चल इस प्रकार के परिवर्तनों

से समझना चाहिये कि उसकी मृत्यु आठ महीनों के बाद होगी ॥ ३४५ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूले तथा स्याद्रुधिरं च कृष्णम् । विद्धं न सम्लायति यत्र दृष्ट्वा जीवेन्मनुष्यश्च हि सप्तमासम् ॥३४६॥

जिसके हाथ के तलुवे में और जीभ की जड़ में पीड़ा होती हो, जिसका खून काला हो, नोकदार पदार्थोंके आघातसे अधिक पीड़ा होती हो, उसकी आयु सात महीनों की होती है ॥३४६॥

मध्यांगुलीनां त्रितयं न वक्रं रोगं विना शुष्यति यस्य कंठः । मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाड्यात्षड्भिः समाभि प्रलयं प्रयाति ॥३४७॥

जिसके हाथ के बीच की तीन अँगुलियाँ टेढ़ी न होती हों, रोग के बिना ही गला सूखता हो और मूर्खतापूर्ण प्रश्न करता हो, तो उसकी आयु छः महीनों की होती है ॥ ३४७ ॥

न यस्य स्मरणं किंचिद्विद्यते भूतकर्मणि ।
सोऽवश्यं पंचमे मासि स्कंधारूढो भविष्यति ॥३४८॥

जिसको पहले के किये गये कार्यों का स्मरण न होता हो, उसकी पाँचवें महीने में मृत्यु होती है ॥ ३४८ ॥

यस्य न स्फुरति ज्योतिः पीड्यते नयनद्वयम् ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥३४९॥

जिसके आखों की ज्योति प्रकाशित न हो और दोनों आँखों में पीड़ा होती हो। उसकी मृत्यु चार महीनों के बाद ही होती है ॥ ३४९ ॥

दन्तश्च वृषणौ यस्य न किंचिदपि पीड्यते ।
तृतीये मासि सोऽवश्यं कालज्ञायां भवेन्नरः ॥३५०॥

दाँतों और अंडकोष में दबाने पर पीडा न होती हो तो तीन महीनों की आयु होती है ॥ ३५० ॥

कालो दूरस्थितो वापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदामि समासेन यथादिष्टं शिवागमे ॥३५१॥

शिवागम के अनुसार कालकी समीपता या दूरता को जानने के उपायों को संक्षेप से कहता हूँ ॥ ३५१ ॥

एकान्तं विजनं गत्वा कृत्वाऽऽदित्यं च पृष्ठतः ।
निरीक्षेन्निजच्छायां कंठदेशे समाहितः ॥३५२॥

एकान्त वनमें जाकर सूर्य की ओर पीठ कर खड़े होकर एकाग्रचित्त से अपने कण्ठ की छाया को देखे ॥ ३५२ ॥

ततश्चाकाशमीक्षेत ह्रीं परब्रह्मणे नमः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तत पश्यति शंकरम् ॥३५३॥

इसके बाद आकाश को ओर देखकर एकसौ आठ बार "ह्रीं परब्रह्मणे नमः" इस मन्त्र के जप से शिवजी का दर्शन होता है ॥ ३५३ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम्।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत्।
वर्षद्वयेन तेनाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ॥३५४॥

श्वेत स्फटिक के समान शुभ्र और अनेक रूपोंको धारण करने वाले शिवजी के जप के प्रभाव से देखता हुआ योगी छः महीनों के योगाभ्यास से प्राणियों का मालिक और दो वर्ष के अभ्यास से उत्पत्ति व संहारकर्ता शिवस्वरूप होजाता है ॥३५४॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानन्दमेव च।
सतताभ्यासयोगेन नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् ॥३५५॥

सतत योगाभ्यास से त्रिकालज्ञाता हो जाता है और उसको अत्यन्त महान् आनन्द प्राप्त होता है और उसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती ॥ ३५५ ॥

तद्रूपं कृष्णवर्णं यः पश्यति व्योम्नि निर्मले।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥३५६॥

जो स्वच्छ आकाश में शंकरजी को कृष्णवर्ण में देखता है, उसकी आयु छः महीनों की होती है इसमें सन्देह नहीं ॥३५६॥

पीते व्याधिर्भयं रक्ते नीले हानिं विनिर्दिशेत्।
नानावर्णोऽथचेत्तस्मिन्सिद्धिश्चगीयतेमहान् ॥३५७॥

शिवजीको पीतवर्णमें देखने से व्याधि, लालवर्ण में देखने से भय, नीलवर्णमें देखने से हानि और चित्र विचित्र वर्णों में देखने से सिद्धि की प्राप्ति होती है ऐसा बड़े लोग कहते हैं ॥३५७॥

॥ अथ छाया दर्शनफलम् ॥

पदे गुल्फे च जठरे विनाशः क्रमशो भवेत् ।
विनश्यतो यदा बाहू स्वयं तु म्रियते ध्रुवम् ॥३५८॥

पाँव, गुल्फ और पेट आदि की छाया न दिखाई देने से या दोनों भुजाएँ न दिखाई दें तो आयु समाप्त हुई समझना चाहिये ॥ ३५८ ॥

बामबाहुस्तथा भार्या नश्यत्येव न संशयः ।
दक्षिणे बंधुनाशो हि मृत्युमात्मोविनिर्दिशेत्॥३५९॥

बायीं भुजा की छाया न दिखाई देने से भार्या का और दाहिनी भुजा की छाया न दिखाई देने से बन्धु आदि का और अपना भी नाश अवश्य होता है ॥ ३५९ ॥

अशिरो मासमरणं विना जंघे दिनाष्टकम् ।
अष्टाभिःस्कंधनाशेनछायालोपेनतत्क्षणात् ॥३६०॥

मस्तक की छाया यदि न दिखाई दे तो एक मासमें, जाँघें और कन्धे न दिखाई देने पर आठ दिनोंमें और शरीरकी छाया बिल्कुल न दिखाई देने पर उसी क्षण मृत्यु होती है ॥३६०॥

प्रातः पृष्ठगते रवौ च निमिषाच्छायांगुलोश्चाधरम् ।
दृष्ट्वार्द्धेन मृतिस्त्वनंतरमहोच्छायां नरा पश्यति ॥
तत्कर्णौ सकरास्य पार्श्वहृदया भावेत्क्षणाद्धात्स्वयम् ।
दिङ्मूढोहि नरः शिरो विगमतो मासांस्तु षड् जिवति ॥ ३६१ ॥

प्रातःकाल सूर्य की ओर पीठ कर अपनी छाया को देखते हुए ओठ या अङ्गुली की छाया यदि न दिखाई दे तो एक निमेष में, छाया ही (सम्पूर्ण शरीर की) न दिखाई दे तो आधे निमेष में, कान, स्कंध, हाथ, मुख, पृष्ठभाग और हृदय की छाया न दिखाई दे तो आधे क्षणमें और शिरकी छाया न दिखाई दे तो उस घबड़ाये हुए पुरुष को मृत्यु छः महीनों के बाद होती है ॥ ३६१ ॥

एकादिषोडशाहानि यदि भानुर्निरन्तरम् ।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकम् ॥३६२॥

उस व्यक्ति की मृत्यु एक महीने में होती है, जिसका सूर्य स्वर सोलह दिन तक बराबर चलता हो ॥ ३६२ ॥

सम्पूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम्॥३६३॥

जिसका सूर्यस्वर ही बराबर चलता हुआ दिखाई दे और चन्द्रस्वर न दिखाई दे उसकी मृत्यु एक पक्ष में होती है ॥३६३॥

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्तते ।
तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ॥३६४॥

जिसका मल, मूत्र और वायु एक साथ निकलता हो, उसका प्राण अस्थिर होता है और वह दस दिनों में मरता है ॥ ३६४ ॥

सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥३६५॥

कालज्ञों का मत है कि हमेशा चन्द्रस्वरही जिसका चलता है, उसकी मृत्यु एक मास में होती है ॥ ३६५ ॥

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥३६६॥

ध्रुव, अरुन्धती, आकाश और मातृकामण्डल को न देख सकने वाला मनुष्य आयुहीन होता है ॥ ३६६ ॥

अरुन्धती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
भ्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमंडलम् ॥३६७॥

अरुन्धती जिह्वा, ध्रुव नाक का अग्रभाग, आकाश भौंहें और मातृमण्डल ताराएँ हैं॥ ३६७ ॥

नव ध्रुवं सप्त घोषं पंच तारां त्रिनासिकाम् ।
जिह्वामेकदिनं प्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ॥३६८॥

भौहों की छाया न दिखाई दे तो नौ दिनोंमें, कानों को बन्द करने पर आवाज सुनाई न दे तो सात दिनों में, ताराएँ न दिखाई दें तो पाँच दिनोंमें, नाक न दिखाई दे तो तीन दिनोंमें और जीभ न दिखाई दे तो एक दिन में मनुष्य की निश्चित मृत्यु होती है ॥ ३६८ ॥

कोणावक्ष्णोरंगुलीभ्यां किंचित्पीड्य निरीक्षयेत् ।
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतिः ॥३६९॥

आँखों के दोनों कोने के उँगुलियों से मिलकर चमकीले बिन्दु (तारे) न दिखाई देने से दस दिनों में मृत्यु होता है ॥ ३६९ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ।
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवंचना ॥३७०॥

तीर्थ स्नान, दान, तप, सुकृत, जप, ध्यान, योग आदि द्वारा काल से छुटकारा मिलता है ॥ ३७० ॥

शरीरं नाशयंत्येते दोषा धातुमलास्तथा ।
समस्तु वायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्द्धनः ॥३७१॥

दुराचरण, धातु एवं मल दोष आदि शरीर का नाश करते हैं । सम प्राण वायु, बल और तेज की वृद्धि करता है ॥३७१॥

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ।
योगाभ्यासत्वमायांति साध्याजप्यास्तु साध्यताम् ॥
असध्याजीवितं घ्नंति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया ॥३७२॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन शरीर होने के कारण इसकी रक्षा करना आवश्यक है । शारीरिक दोषों एवं रोगों को योगाभ्यास से दूर करना चाहिये । अन्यथा उक्त रोग असाध्य होकर किसी भी उपाय से दूर नहीं हो सकते और रोगी को मारते हैं ॥ ३७२ ॥

येषां हृदि स्फुरति शाश्वतमद्वितीयं तेजस्तमोनि-

वहनाशकरं रहस्यम्। तेषामखंडशशिरम्यसुकांतिभा-
जांस्वप्नेऽपि नो भवतिकालभयं नराणाम् ॥३७३॥

जिसको नित्य, अद्वितीय और तम (अज्ञान) नाशक स्वर-ज्ञात होता है, उस चन्द्र की तरह प्रकाशमान् पुरुष को स्वप्नमें भी मृत्यु का भय नहीं होता है ॥ ३७३ ॥

इडा गङ्गेति विज्ञेया पिंगला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती विद्यात्प्रयागादि समस्तथा ॥३७४॥

इडा गंगा, पिंगला यमुना, सुषुम्ना सरस्वती नदी और शरीर को प्रयाग के सदृश समझना चाहिये ॥ ३७४ ॥

आदौ साधनमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
बद्धपद्मासनो योगी बंधयेदुड्डियानकम् ॥३७५॥

पहले प्रत्यक्ष फल दिखाने वाले साधन को कहा गया है । अब पद्मासन लगाकर योगाभ्यासी मनुष्य उड्डियान (अपान वायुको नाभी के समीप स्थिर करने वाली) क्रिया की साधना करे।३७५।

पूरकः कुंभकश्चैव रेचकश्च तृतीयकः ।
ज्ञातव्यो योगिभिर्नित्यं देहसंशुद्धिहेतवे ॥३७६॥

योगियों को शरीर शुद्धि के लिये पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामों को जानना चाहिये । (पूरक—श्वास को खींचना, कुम्भक—श्वासको भीतर स्थिर करना, रेचक—श्वास को छोड़ना इस प्रकार प्राणायाम की तीन क्रियाएँ होती हैं) ॥ ३७६ ॥

पूरकः कुरुते वृष्टिं धातुसाम्यं तथैव च ।
कुंभके स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ॥३७७॥

शरीर में पूरक प्राणायाम अमृत वृष्टि करता है। और धातुओं की समता रखता है। कुंभकसे शरीर की स्थिति स्थिर रहती है। इससे जीवों की रक्षा वृद्धिंगत होती है ॥ ३७७ ॥

रेचको हरते पापं कुर्याद् योगपदं व्रजेत् ।
पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबन्धं च कारयेत् ॥३७८॥

रेचक प्राणायाम से पाप नष्ट होते हैं। इस तरह तीनों प्राणायाम करने से योग-पद की प्राप्ति होती है। प्राणायाम के बाद स्थिर चित्त होकर लय-बन्ध करने में (मृत्यु को हराने में) समर्थ होता है ॥ ३७८ ॥

कुंभयेत्सहजं वायुं यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।
रेचयेच्चन्द्रमार्गेण सूर्येण पूरयेत्सुधीः ॥३७९॥

बुद्धिमान् को अपने प्राणको यथाशक्ति सूर्यस्वर के मार्ग से खींचकर भीतर स्थिर रखकर और चन्द्रमार्ग से छोड़ देना चाहिये ॥ ३७९ ॥

चन्द्रं पिबति सूर्यश्च सूर्यं पिबति चन्द्रमाः ।
अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचंद्रतारकम् ॥३८०॥

पारस्परिक काल की अवधि से रहित होकर सूर्यस्वर से चन्द्रस्वर और चन्द्रस्वर से सूर्यस्वर पीने वाला मनुष्य जब तक चन्द्रतारा आदि रहते हैं, तब तक जीवित रहता है ॥ ३८० ॥

स्वीयांगे वहते नाडी तन्नाडीरोधनं कुरु ।
मुखबन्धममुञ्चन्वै पवनं जायते युवा ॥३८१॥

शरीर में बहने वाली नाडी को रोक कर मुखसे भी श्वास को रोकने वाला वृद्ध भी युवक होता है ॥ ३८१ ॥

मुखनासाक्षिकर्णांतानंगुलीभिर्निरोधयेत् ।
तत्त्वोदयमिति ज्ञेयं षण्मुखीकरणं प्रिये ! ॥३८२॥

हे प्रिये ! मुख, नाक, आँख और कान को हाथों की उँगुलियों से बन्द करने की क्रिया को षण्मुखीकरण कहा जाता है और इससे तत्वों का ज्ञान होता है ॥ ३८२ ॥

तस्य रूपं गतिः स्वादो मंडलं लक्षणं त्विदम् ।
स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित्॥३८३॥

तत्वों के रूप, गति, स्वाद, मण्डल आदि लक्षण षण्मुखी-मुद्राके अभ्यास के द्वारा जाना जाता है स्वरों के मार्गों को जानने वाला ज्ञात करता है ॥ ३८३ ॥

निराशो निष्कलो योगी न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
वासनामुन्मनां कृत्वा कालंजयति लीलया ॥३८४॥

आशा रहित एवं पाप रहित योगी वासनासे रहित होकर किसी भी विषय को चिन्ता न कर मृत्यु को लीलासे जीतता है ॥ ३८४ ।

विश्वस्य वेदिकाशक्तिर्नेत्राभ्यां परिदृश्यते ।
तत्रस्थं तु मनो यस्य यामभात्रं भवेदिह ॥३८५॥

योगी का चित्त एक पहर के लिये भी स्थिर हो जाय तो उसकी आँखों द्वारा संसार को जानने कि शक्ति उसे प्राप्त होती है ॥ ३८५ ॥

तस्यायुर्वर्धते नित्यं घटिकात्रयमानतः ।
शिवेनोक्तं पुरा तंत्रे सिद्धस्य गुणगह्वरे ॥३८६॥

ऐसे योगी की आयु तीन घटिका प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ती है । सिद्धोंके गुणों की खान ऐसे तन्त्रमें शिवजी ने कहा है ॥ ३८६ ॥

बद्धं पद्मासनस्थो गुदगतपवनं सन्निरुद्धयाप्तमुच्चैस्तं
तस्यापानरन्ध्रक्रमजितमनिलं प्राणशक्त्या निरुद्धय॥
एकीभूतं सुषुम्नाविवरमुपगतं ब्रह्मरंध्रे च नीत्वा
निक्षिप्याकाशमार्गे शिवचरणरता यान्ति ते
केऽपि धन्याः ॥ ३८७ ॥

वे धन्य हैं, जो पद्मासन लगाकर अपान वायुको रोककर ऊपर ले जाकर अपान रंध्रसे क्रमशः जाती हुई इस वायु को प्राणवायु से रोक कर उन दोनों को एक रूप कर बादमें सुषुम्ना रन्ध्रमें से ले जाकर ब्रह्मरन्ध्रमें ले जाते हैं । वे शिवभक्त योगी मरणोपरान्त आकाश मार्ग से शिवधाम को जाते हैं ॥३८७॥

एतज्जानाति यो योगी एतत्पठति नित्यशः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलम् ॥३८८॥

जो इस स्वर शास्त्र को जानता है और पाठ करता है वह दुःखों से रहित होकर इच्छितफल प्राप्त करता है ॥ ३८८ ॥

स्वरज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पादतले भवेत् ।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ॥३८९॥

स्वर ज्ञानी की दासी लक्ष्मी होती है और उसे सदा शारीरिक सुख प्राप्त होता है ॥ ३८९ ॥

प्रणवः सर्ववेदानां ब्राह्मणो भास्करो यथा ।
मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ॥३९०॥

जैसे सभी वेदोंमें ओंकार, ब्राह्मण और सूर्य पूज्य हैं वैसे ही मृत्युलोकमें स्वरज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ और पूज्य है ॥ ३९० ॥

नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।
नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनम् ॥३९१॥

तीनों नाडियों एवं तत्वों के ज्ञानके समान एक कोटि रसायन भी नहीं होते ॥ ३९१ ॥

एकाक्षरप्रदातारं नाडीभेदविवेचनम् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणो भवेत् ।३९२।

इस स्वर शास्त्रके एक भी अक्षरका ज्ञान देनेवाले गुरु के ऋण से मुक्त होने के योग्य इस संसारमें कोई भी द्रव्य नहीं है ॥ ३९२ ॥

स्वरस्तत्त्वं तथा युद्धं देविवश्यं त्रयस्तथा ।
गर्भाधानं च रोगश्च कलार्द्धेनैवमुच्यते ॥३९३॥

इस स्वर शास्त्रमें स्वरतत्व, युद्ध, स्त्री-वशीकरण, गर्भाधान तथा रोग आदि बातों का वर्णन आधी कलासे ही किया गया है ॥ ३९३ ॥

एवं प्रवर्तितं लोके प्रसिद्धः सिद्धयोगिभिः ।
चन्द्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतां सिद्धिदायकम् ॥३९४॥

सिद्धों और योगियों ने इसे लोगोंमें प्रचलित किया है और सूर्य या चन्द्र ग्रहणमें इसका पाठ सिद्धि का देनेवाला है ॥ ३९४ ॥

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रां चाहारमल्पकम् ।
चिन्तयेत्परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ॥३९५॥

निद्रा और आहार को अल्पमात्रा में सेवन करता हुआ आसनपर स्थित योगी परमात्मा का चिन्तन करे और उसको जाने । इससे योगी ज्ञानी होता है ॥ ३९५ ॥

॥ इति शुभम् ॥

———

❀ शिवस्तुति चालीसा ❀

दोहा—जै गणेश गिरिजा सुवन, मङ्गल मूल सुजान।
कहत अयोध्या दास तुम, देव अभय वरदान॥

❀ चौपाई ❀

जै गिरिजापति दीनदयाला। सदा करत सन्तन प्रतिपाला॥
भाल चन्द्रमा सोहत नीके। कानन कुण्डल नागफनी के॥
अंग गौर शिर गंग बहाये। मुण्डमाल तन छार लगाये॥
वस्त्रखाल बाघम्बर सोहै। छविको देख नाग मुनि मोहै॥
मैना मातु कि हवे दुलारी। वाम अंग सोहत छवि न्यारी॥
कर त्रिशूल सोहत छवि भारी। करत सदा शत्रुन क्षयकारी॥
नन्दिगणेश सोहैं तहँ कैसे। सागर मध्य कमल हैं जैसे॥
कार्तिक श्याम और गणराऊ। या छविको कहि जात न काऊ॥
देवन जबहीं जाय पुकारा। तबहीं दुःख प्रभु आप निवारा॥
किया उपद्रव तारक भारी। देवन सब मिलि तुमहिं जुहारी॥
तुरत षडानन आप पठायउ। लवनिमेषमहँमारि गिरायउ॥
आप जलंधर असुर संहारा। सुयश तुम्हार विदित संसारा॥
त्रिपुरासुर सन युद्ध मचाई। सबहिं कृपाकर लीन बचाई॥
किया तपहि भागीरथ भारी। पुरेव प्रतिज्ञा तासु पुरारी॥
दानिन महँ तुम सम कोउ नाहीं। सेवक अस्तुति करत सदाहीं॥
वेदनाम महिमा तव गाई। अकथ अनादि भेद नहिं पाई॥
प्रगटेउ दधिमंथन में ज्वाला। जरे सुरासुर भये विहाला॥
कीन्ह दया तहँ करी सहाई। नीलकण्ठ तव नाम कहाई॥

पूजन रामचन्द्र जब कीन्हा। जीत के लंक विभीषण दीन्हा॥
सहस कमल में होरहे धारी। कीन्ह परीक्षा जबहिं पुरारी॥
एक कमल प्रभु राखेउ गोई। कमल नैन पूजन चहँ सोई॥
कठिन भक्ति देखी प्रभु शंकर। भये प्रसन्न दिये इच्छित वर॥
जय जय जय अनन्त अविनासी। करत कृपा सबके घट वासी॥
दुष्ट सकल नित मोहि सतावै। भ्रमत रहे मोहिं चैन न आवै॥
त्राहि त्राहि मैं नाथ पुकारो। यहि अवसर मोहिं आन उबारो॥
लै त्रिशूल शत्रुन को मारो। संकट से मोहिं आनि उबारो॥
मात-पिता भ्राता सब होई। संकट में पूछत नहिं कोई॥
स्वामी एक है आस तुम्हारी। आय हरहु अब संकट भारी॥
धन निरधनको देत सदाहीं। जो कोइ जाँचा वा फल पाहीं॥
अस्तुति केहि विधि करौं तुम्हारी। क्षमहु नाथ अब चूक हमारी॥
शंकर हो संकट के नाशन। विघ्न विनाशन मंगल कारन॥
योगि यती मुनि ध्यान लगावैं। शारद नारद शीश नवावैं॥
नमो नमो जैं नमो शिवाये। सुरब्रह्मादिक पार न पाये।
जो यह पाठ करै मन लाई। तापर होत हैं शम्भु सहाई॥
ऋनिया जो कोइ हो अधिकारी। पाठ करै सो पावन हारी॥
पुत्रहीन कर इच्छा कोई। निश्चय शिवप्रसाद ते होई॥
पण्डित त्रयोदशी को लावै। ध्यान पूर्वक होम करावैं॥
त्रयोदशी व्रत करै हमेशा। तन नहिं ताके रहे कलेशा॥
धूप दीप नैवेद्य चढ़ावै। शंकर सन्मुख पाठ सुनावै॥
जन्म जन्म के पाप नसावै। अन्त वास शिवपुर में पावै॥
कहे अयोध्या आस तुम्हारी। जानि सकल दुख हरहु हमारी॥

दोहा—नित्य नेम करि प्रातही, पाठ करैं चालीस।
तुम मेरी मनकामना, पूर्णकरहु जगदीश॥
मगसर छठि हेमन्त ऋतु, सम्वत चौसठ आन।
अस्तुति चालीसा शिवहिं, पूर्ण कीन कल्यान॥

शिवजी की आरती

शीशगङ्गअर्द्धङ्ग पार्वती सदा विराजत कैलासी॥ नन्दी भृंगी नृत्य करत हैं गुण भक्तन शिवकी दासी॥ १॥ शीतल मन्द सुगन्ध पवन हैं वैठे हैं शिव अविनाशी। करत गान गन्धर्व सप्त स्वर राग रागिनी अति गासी॥ २॥ यक्ष रक्ष भैरव जहँ डोलत बोलत हैं बनके बासी। कोमल शब्द सुनावत सुन्दर भँवर करत हैं गुंजासी॥ ३॥ कल्पद्रुम अरु पारिजात तरु लाग रहे हैं लक्षासी। कामधेनु कोटिक जहँ डोलत करत फिरत हैं भिक्षासी॥ ४॥ सूर्यकान्ति सम पर्वत शोभित चन्द्र-कान्ति भवमीवासी। छहो तो ऋतु नित फलत रहत हैं पुष्प चढ़त हैं वर्षासी॥ ५॥ देव मुनि जन की भीड़ पड़त हैं निगम रहत जो नित गासी। ब्रह्मा विष्णु ज्याको ध्यान धरत हैं कुछ शिव हमको फरमासी॥ ६॥ ऋद्धिसिद्धि के दाता शंकर सदा अनन्दित सुख रासी। निष्काम सुमिरन सेवा करते टूट जाय यम की फाँसी॥ ७॥ त्रिशूलधर जी को ध्यान निरन्तर मन लगाय कर जो गासी। दूर करो विपदा शिव तनु को जन्म२ शिव पद पासी॥ ८॥ कैलासी काशी के वासी अविनाशी मेरि सुध लीज्यो। सेवक जानि सदा चरनन को अपना जान

दरश दीज्यो ॥ ९ ॥ तुम तो प्रभुजी सदा सयाने अवगुण मेरा अब ढकियो। सब अपराध क्षमा कर शंकर किंकर की विनती सुनियो ॥ १० ॥

श्रीविश्वनाथाष्टक

दो०—द्वादशलिंग प्रधान प्रभु, विश्वनाथ महराज। महिमा कहि कहि जासु गुण, राख्यो सकल समाज ॥

छं०—कैलासवासि नमामि हे प्रभु! आदि शम्भु सदा शिवं, मणिरूप चन्द्र अनूप मस्तक जटाजूट सुशोभितम्। नर मुण्ड माल विशाल राजत गले गरल विभूषितम् ॥ यह पापमोचन विमल मानस वृषभवाहन मोदितम् ॥ १ ॥ हर वृषध्वज करगहे डमरू बाघ चर्म कलेवरम्। जय भस्म अङ्ग समस्त छाये विश्वनाथ स्वभावकम्। पुनि कामदेव सुताड़ि तोष्यो नाद बिन्दु संयोगकं, जगजननि गंगा बहति लटसों पञ्चमुख अघमोचनम्। २॥ सुरगण सुपूजित भाल शशिधर लोचनं त्रय लोचनं। इह नगर काशी लिंग द्वादश ज्योति लिंग विशेषनम्। मणिधर फणीन्द्र विराज माला मालती मनमोहनं, हे धूप दीप निवेदितं प्रभु विश्वनाथ सुसोहनम् ॥ ३ ॥ जहँ कनक कलश विराज मन्दिर करण कुण्डल मण्डितं। अरु मुकुट क्रीट सुहार मुक्ताकार मुनि मन रञ्जितम्। हे गौर वरण सुगौर शशिधर इन्दुशशिधर शोभितम्। हे विश्वनाथसनाथ दीनानाथ सुर मन मोहितम् ॥४॥ प्रभु गन्ध मादन शैल बैठहिं योग आसन आसनम्। जय मदन दाहक मदन चाहक नाथ मदन सुसोहनम्। तुम अरध अंग

सुअंग धारौ शैलजा मनभावनम्। प्रभु विश्वनाथ सुचत्र धारन चरन कमल सुवासनम् ॥ ५ ॥ करि ध्यान गावहिं नारदादि बखान चरित मनोहरम्। हर प्राण अखिल कुपात्र दानव अभय प्रभु विश्वेश्वरम्। वह त्रिपुर दैत्य सुदैत्य आदिक लहेउ फल शशि शेखरं। तुम होश करि निज लोक भेजे महादुष्ट लमाकरम् ॥ ६ ॥ हे नाथ अपनी बुद्धि दूषण कबहुँ नाम मनोहरं। नहिं लिया पामर जाय रचा नाथ हे विश्वम्भरम्। सब जगत कर कल्यान कीन्हों नाम पाय सुशंकरं। हर मोर कुबुधि सुविमल बुधि दे नाथ हर मम मत्सरं ॥ ७ ॥ धनुबान कर गहि भानु रघुकुल ध्यान जासु विराजितं। शिव परम भक्त सुभागवत कहि योगिनं जेहि सेवितं। करि कर्म्म षट नहिं सकत लहि वह नाथ दत प्रमाणितं। प्रभु आशुतोष सुतोष कीन्हों विश्व नौमि नमामि तं ॥ ८ ॥

* इति *

शिवशंकर प्रेस, बुलानाला, वाराणसी।

केरल-प्रश्न-संग्रह

● भाषाटीकासहितः ●



संशोधक तथा टीकाकार :-

ज्यो० आ० पं० श्रीसीताराम झा

प्रकाशकः

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली :: वाराणसी-१

मूल्य ३-००

* श्रीः *

केरल-प्रश्न-संग्रह

•

मिथिलादेशान्तर्गत-चौगमा-निवासि-वाराणसेय-संस्कृत-

विश्वविद्यालयीय-प्राध्यापक-ज्यौ० आ०-

स्व० पं० श्रीसीताराम झा कृत-

भाषार्थसहितः ।

*

तेनैव संशोधितः ।

❀

स च

वाराणसीस्थ-

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत-पुस्तकालयाऽध्यक्षैः स्वकीये

'मास्टर प्रिंटिंग प्रेस' यन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

❀

❀

अष्ठम् संस्करणम्]　　सन् १९८३ ई०　　[मूल्यम् ३-००

भूमिका

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तथा वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि तिष्ठति ॥"

समस्त वेदांगों में ज्योतिषशास्त्र श्रेष्ठ माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र के भी गणित, जातक और संहिता ३ स्कन्ध हैं। इन तीनों में भी संहिता सर्वोपयुक्त है। क्योंकि इसमें ग्रहनक्षत्रों की स्थितिवश समय के शुभाशुभ फल बतलाये गये हैं। उसी संहिता का एक अंग प्रश्नशास्त्र है, जिसमें समय और स्वर के द्वारा शुभाशुभ फलों का निरूपण है। जिसके शङ्करादि देवों तथा वशिष्ठादि महर्षियों और आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ हैं। जिसमें बहुत अनुपलब्ध और बहुत गूढ़ाशय के ही हैं। तथा जो टीकादि द्वारा स्पष्टाशय के भी हैं, तो बहुत ग्रन्थों में ग्रन्थों में लग्न और ग्रहों की स्पष्टता करके फलों किया गया है, जिससे शीघ्र प्रश्नों का उत्तर कहना कठिन हो जाता है। इस लिये केरलीय प्रश्न ग्रन्थों का ही लोग आदर करते हैं, क्योंकि इसमें केरल स्वर और वर्ण पर से ही प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर तत्काल ही बतलाने की क्रिया दिखाई गई है। केरलीय ग्रन्थों मे भी केवल प्रश्न संग्रह सर्वोत्तम है। परञ्च उपलब्ध पुस्तकों में लेखक आदि के दोषवश बहुत अशुद्धियाँ हो गई थीं। इसलिये मैंने इसका संशोधन करके अल्प-संस्कृतज्ञों के उपकारार्थ सोदाहरण भाषार्थ लिखकर काशी के बाबू श्री जगन्नाथ प्रसादजी को सादर समर्पण कर दिया है, जिन्होंने अपने द्रव्य व्यय से इसे प्रकाशित किया है। इससे जनता का कुछ भी उपकार होतो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। इसमें मुद्रणयन्त्र तथा दृष्टिदोषवश जो कुछ त्रुटि हुई हो तदर्थ क्षमा प्रार्थी हूँ। यतः—

"स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥" इति—

विनीत—

—श्रीसीताराम झा

❁ केरल प्रश्नसंग्रहस्थ-विषयानुक्रमणिका ❁

वर्षेऽङ्काङ्कामृतुल्ये श्रीसीतारामशर्मणा ।
संशोध्य केरलग्रन्थो भाषया समलङ्कृतः ॥

केरल-प्रश्न-संग्रह

भाषाटीकासहितः

टीकाकारकृत-मङ्गलम्—

नत्वाऽर्कं जगदाधारं केरलप्रश्नसंग्रहे।
वच्मि सोदाहृतिं भाषाटीकां बालमनोमुदे ॥

ग्रन्थकार-कृत-मङ्गलम्—

त्रैलोक्यफलबोधाय येन दिव्येन चक्षुषा।
त्रिकालविषयाः प्रोक्तास्तस्मै केरलये नमः १।

तीनों लोक के शुभाशुभ फल जानने के लिए जिसने अपने दिव्यनेत्र से भूत, भविष्य, वर्तमान विषय को कहा है, उस केरल महानुभाव को नमस्कार करता हूँ ॥ १॥

ज्ञानदीपकमासाद्य वर्ति कृत्वा सदक्षरैः।
स्वरस्नेहेन संयोज्य ज्वालयेदुत्तरेन्धनैः। २।

ज्ञानरूपी दीपक को अक्षररूप बत्ती, स्वर रूप तेल और उत्तररूप लकड़ी से प्रज्वलित करना चाहिये ॥ २ ॥

प्रश्नोत्तर कहने में योग्य व्यक्ति और समय—

क्षुद्र-पाखण्ड-धूर्तेषु श्रद्धाहीनोपहासके।
नोत्तरं तथ्यतामेति यदि शम्भुः स्वयं वदेत्। ३।
सभायां नैव वक्तव्यं नैव प्रश्नोत्तरं निशि।
नाऽपराह्णे त्वविश्वस्ते त्वरितं न कदाचन ॥ ४ ॥

क्षुद्र, पाखण्डी, धूर्त, श्रद्धाहीन और उपहास करने वाले को यदि स्वयं महादेव भी प्रश्नोत्तर कहें तो भी सत्य नहीं हो सकता है। सभा में, रात्रि में, अपराह्ण में तथा अविश्वस्तों को और बिना विचारे हुए जल्दी में प्रश्नोत्तर नहीं कहना चाहिए ॥ ३-४ ॥

भक्तायार्ताय दीनाय दैवज्ञो न दिशेद्यदि ।
विफलं भवति ज्ञानं तस्मात्तेभ्यः सदा वदेत् ॥ ५ ॥

भक्तिमान्, दुःखी और धनहीन जनों को जो प्रश्नोत्तर नहीं कहता है उसका ज्ञान व्यर्थ हो जाता है, इस लिये इन लोगों को अवश्य उत्तर कहना चाहिये ॥ ५ ॥

प्रश्न करने की विधि—

सम्पूज्य खचरान् साङ्गान् दैवज्ञं स्वक्रियापरम् ।
श्रद्धायुक्तः पूर्णपाणिः पृच्छेदव्याकुलः पुमान् ॥ ६ ॥
फलपुष्पयुतो यो हि दैवज्ञं परिपृच्छति ।
तस्यैव कथयेत् प्रश्नं सत्यं भवति नान्यथा ॥ ७ ॥

साङ्ग नवग्रहों की (पञ्चोपचार से, अथवा मानसिक) पूजा करके जो ज्योतिषी अपने कर्म में दक्ष हो उसके पास यथा-शक्ति फल, द्रव्यादि युक्त जाकर सावधान चित्त से प्रश्न करे। ज्योतिषियों को चाहिए कि—जो फलादियुक्त आकर प्रश्न करे उसी को प्रश्न कहे, अन्यथा उत्तर सत्य नहीं होता है ॥ ६-७ ॥

दिशा से प्रश्न का शुभाशुभ फल—

प्राची प्रतीची माहेशी कौबेरी दिक् शुभावहा ।
अवाची राक्षसी दुष्टा शून्याग्नेयी च मारुति ॥ ८ ॥

यदि पूर्व, पश्चिम, ईशान और उत्तर में बैठकर प्रश्न करे तो शुभ तथा दक्षिण और नैर्ऋत्यकोण में अशुभ और अग्नि, वायुकोण से शून्य फल समझना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रश्न समय में शुभ शकुन—

दृङ्मनसो प्रीतिकरं प्रश्नेषु दर्शनं यदि श्रवणम् ।
माङ्गल्यद्रव्याणां भवति शुभं विनिर्दिशेच्चत्र ॥ ९ ॥
हय-गज-वृष-हंसादेः पृच्छाकालेयदारुतंभवति ।
दर्शनमथवा तेषां शुभदं प्रश्नं विनिर्दिशेच्चत्र ॥ १० ॥

प्रश्न समय में दृष्टि और मन के प्रसन्नकारक तथा मङ्गलमय वस्तुओं का दर्शन या श्रवण हो तथा हाथी, घोड़ा, हंस आदि पक्षियों के शब्द श्रवण या दर्शन हो तो प्रश्न का फल शुभ समझना ॥ ९–१० ॥

विशेष—इससे सिद्ध होता है कि अशुभ वस्तु के दर्शन और श्रवण से अशुभ फल होता है ॥ ९–१० ॥

प्रश्नों के संयुक्त आदि आठ भेद—

संयुक्तः, असंयुक्तः, अभिहतः, अनभिहतः, अभि- ।
घातितः, आलिङ्गितः, अभिधूमितः, दग्ध इति ॥ ११ ॥

इस प्रकार प्रश्नों के आठ भेद हैं ॥ ११ ॥

उनके लक्षण—

यदि प्रष्टा प्रश्नसमये स्वकायं स्पृष्ट्वा पृच्छति ।
तदा संयुक्तप्रश्नः स च लाभकरी भवति ॥ १२ ॥

यदि प्रश्नकर्त्ता अपने शरीर को स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो 'संयुक्त' प्रश्न समझना, वह लाभकारक होता है ॥ १२ ॥

यदिपथिशयानोदोला-गज-तुरङ्गारूढोवा भवति ।
भावरहितः फलद्रव्यविवर्जितः पृच्छति तदाऽसंयुक्तप्रश्न ।
अस्मिन् बहुदिनानन्तरं लाभादिसुखं भवति ॥ १३ ॥

यदि मार्ग में चलता हुआ, वा सोया हुआ, पालकी, हाथी, घोड़ा आदि सवारी पर चढ़ा हुआ भावहीन, फल-द्रव्यरहित होकर पूछे तो असंयुक्त प्रश्न समझना, वह बहुत दिनों में सुख लाभकारक होता है ॥ १३ ॥

यदि प्रष्टा वामहस्तेन वामाङ्गं स्पृशति ।
तदाऽभिहतः प्रश्नः, अलाभकरो भवति ॥ १४ ॥

यदि वाम हाथ से अपने वाम अङ्ग का स्पर्श करता हुआ पूछे तो अभिहत प्रश्न समझना, वह लाभकारक नहीं होता है ॥ १४ ॥

यदि प्रष्टा स्वहस्तेन परकायं स्पृशति ।
तदाऽनभिहतः प्रश्नः कार्यस्यलाभकरो भवति ॥ १५ ॥

यदि अपने हाथ से दूसरे का अंग स्पर्श करता हुआ पूछे तो अनभिहत प्रश्न कहाता है, वह कार्य सिद्धकारक होता है ॥ १५ ॥

यदि प्रष्टा मस्तकं कटिं हृदयं हस्तं पादं च मर्दयेत् ।
तदाऽभिघातिकः प्रश्नः शोकसन्तापकारको भवति ॥ १६ ॥

यदि मस्तक, कमर, हृदय, हाथ, पैर खुजलाता हुआ पूछे तो अभिघातिक प्रश्न समझना, वह शोक, सन्तापकारक होता है ॥ १६ ॥

यदि प्रष्टा दक्षिणकरेण निजं दक्षिणाङ्गं स्पृशति ।
तदाऽऽलिङ्गितः प्रश्नः लाभसुखादिकारको भवति ॥ १७ ॥

यदि अपने हाथ से अपने दाहिने अंग का स्पर्श करता हुआ पूछे तो आलिङ्गित प्रश्न होता है, वह सुख, लाभ आदिकारक होता है ॥ १७ ॥

यदि प्रष्टा दक्षिणकरेण वामकरेण वा सर्वाङ्गं स्पृशति तदाऽभिधूमितः प्रश्नः । अस्मिन् प्रश्ने किञ्चिल्लाभः मित्राद्यागमनं च ॥ १८ ॥

यदि अपने हाथ से सर्वाङ्ग (अनेक अङ्ग) का स्पर्श करता हुआ प्रश्न करे तो अभिधूमित प्रश्न होता है, उसमें थोड़ा लाभ और मित्रादि का आगमन होता है ॥ १८ ॥

यदि प्रष्टा रोदनदुःखभयार्तनीचस्थलसन्निधौ भक्तिभाव-रहितः पृच्छति तदा दग्धप्रश्न उदाहृतः । एष प्रश्नः शोक-सन्तापदुःखपीडाबह्वलाभकरो भवति । १९ ।

यदि रोते हुए, दुःखी, भय पीड़ित आदि तथा अधमजनों के समीप में प्रश्न करे तो दग्ध प्रश्न कहाता है, वह प्रश्न शोक, सन्ताप, दुःख और हानिकारक होता है ॥ १६ ॥

अथ जीवधातुमूलज्ञाननष्टद्रव्यस्थानबन्धमोक्षण-जीवितमरणजयपराजयलाभाऽलाभगमनाऽऽगमन-त्रिकालप्रश्नान् प्रकाशयतीद शास्त्रं नाऽन्यथा । १ ।

स्पष्टार्थ । भाव यह है कि यह (केरल) शास्त्र भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल के फल बतलाने वाला है । इसमें अन्यथा नहीं होता है ॥ १ ॥

जीव, धातुऔर मूल का ज्ञान—

ऊर्द्ध्वदृष्ट्या भवेज्जीव अधोदृष्ट्या च मूलकम् ।
समदृष्ट्या भवेद्धातुर्मूलदेवेन भाषितम् ।२।

ऊपर दृष्टि करके पूछे तो जीव, नीचे दृष्टि करके पूछे तो मूल, और सामने दृष्टि करके प्रश्न करे तो धातु सम्बन्धी प्रश्न समझना । ऐसा मूलदेव याचार्य ने कहा ॥ २ ॥

यदा प्रष्टा प्रश्नं पृच्छति तदा दिनमानं त्रिभि-र्विभज्योदये आलिङ्गितप्रश्नः ।३। मध्यवेलायां अभिधूमितप्रश्नः ।४। अस्तङ्गतवेलायां दग्ध-प्रश्नः ।५। उदयवेलायां जीवधातुमूलम् ।६। मध्यवेलायां धातुमूलजीवं वदेत् ।७। अस्तङ्गतवेलायां मूलजीवधातुं वदेत् ।८।

जिस दिन प्रश्न करे, उस दिन दिनमान के ३ भाग करना, प्रथम भाग (उदय वेला) में प्रश्न हो तो आलिङ्गित, मध्य भाग में प्रश्न हो तो अभि-धूमित, तृतीय भाग (अस्तवेला) में प्रश्न हो तो दग्ध प्रश्न समझना। उदय वेला के भी बराबर तीन भाग बनाकर क्रम से जीव, धातु और मूल। मध्य वेला के ३ भाग में क्रम से धातु, मूल जीव। अस्त वेला के ३ भाग में क्रम से मूल, जीव, धातु सम्बन्धी प्रश्न समझना चाहिये ।। ३८ ।।

उदाहरण—किसी ने सूर्योदय से ७ घड़ी पर प्रश्न किया, उस दिन दिन मान २७ है, तो ९, ९ घड़ी के तीन भाग हुए। अतः प्रथम (उदय) वेला में प्रश्न होने के कारण आलिंगित प्रश्न हुआ। अब प्रथम वेला के भी तीन भाग करने से ३-३ घड़ी हुई, इसलिये प्रश्न का समय तृतीय भाग में पड़ा, अतः मूल सम्बन्धी प्रश्न है, ऐसा उत्तर हुआ। इसी प्रकार सर्वत्र उक्त लक्षणों से समझना ।। ३८ ।।

आलिङ्गितवेलायामालिङ्गितप्रश्ने आलिङ्गित-फलम् ।९। आलिङ्गितवेलायामभि-धूमितप्रश्ने अभिधूमितफलम् ।१०। आलि-ङ्गितवेलायां दग्धप्रश्ने दग्धफलम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार यदि आलिगित वेला में ही आलिगित (प्रथम भाग) में प्रश्न हो तो आलिंगित का फल, यदि आलिंगित वेला में अभिधूमित (द्वितीय भाग) में प्रश्न हो तो अभिधूमित का फल, यदि आलिंगित वेला के दग्ध (तृतीय भाग) में प्रश्न हो तो दग्ध फल समझना। जैसे—उपरोक्त प्रश्न में आलिंगित वेला के तृतीय भाग (दग्ध) प्रश्न समय है, इसलिये दग्ध प्रश्न हुआ ॥ ९–११ ॥

अथाभिधूमितवेलायामभिधूमितप्रश्ने आलिंगित-फलम् ।१२। अभिधूमितवेलायां दग्ध-

प्रश्ने अभिधूमितफलम् ॥ १३ ॥ अभिधूमित-
वेलायामालिंगितप्रश्ने दग्धफलम् ॥ १४ ॥

अभिधूमित वेला में भी यदि अभिधूमित (प्रथम भाग) में प्रश्न हो तो आलिंगित फल, अभिधमित वेला के दग्ध (द्वितीत भाग) में प्रश्न हो तो अभिधूमित, अभिधूमित वेला के अलिंगित (तृतीय भाग) में प्रश्न हो तो दग्ध ही फल समझना ॥ १२–१४ ॥

दग्धवेलायां दग्धप्रश्ने आलिगितफलम् ॥१५॥
दग्धवेलायामलिंगितप्रश्ने अभिधूमितफलम् ॥१६॥
दग्धवेलायामभिधूमितप्रश्ने दग्धफलम् ॥१७॥

दग्ध वेला के दग्ध (प्रथम भाग) में प्रश्न हो तो आलिंगित, दग्धवेला के आलिंगित (द्वितीय भाग) में प्रश्न हो तो अभिधूमत, दग्धवेला के अभिंधूमित (तृतीय भाग) में प्रश्न हो तो दग्ध फल समझना ॥ १५–१७ ॥

इति केरलमतेनाष्टविधप्रश्नविचारः ।

❀

पूर्वाह्णे बालक मुखात् पुष्पनाम् तु ग्राहयेत ।
मध्याह्ने युवतिमुखात् फलनाम च ग्राहयेत ॥ १ ॥
अपराह्णे वृद्धमुखात् वृक्षनाम च ग्राहयेत् ।
नद्या वा ग्राहयेन्नाम रात्रौ सर्वमुखादूः बुद्धः ॥ २ ॥

पूर्वाह्ण (दिन के प्रथम भाग) में बालक के मुख से किसी पुष्प के नाम ग्रहण करावे। द्वितीय भाग में स्त्री के द्वारा किसी फल का नाम ग्रहण करावे। दिन के तृतीय भाग में वृद्ध पुरुष के द्वारा किसी वृक्ष (वट, पिप्पल आदि) और रात्रि में सब के मुख से नदी (गंगा आदि) का नाम ग्रहण करावे। और उन अक्षरों से आग कहे विधि से पिण्ड बनाकर फल कहे ॥ १– ॥

अथवा-पृच्छकस्य वाक्याक्षराणि स्वरसंयुक्तानि ग्राह्याणि ।
यदि च प्रश्नाक्षराण्यधिकान्यस्पष्टानि भवेयुस्तदाऽयं विधिः ॥३॥
यदि प्रश्नकर्ता ब्राह्मणस्तदा तन्मुखात् पुष्पस्य नाम ग्राहयेत् ॥४॥
यदि प्रश्नकर्ता क्षत्रियस्तदा कस्याश्चिन्नद्या नाम ग्राहयेत् ॥५॥
यदि प्रश्नकर्ता वैश्यस्तदा देवानांमध्येकस्यचिद्देवस्यनाम ग्राहयेत्।
यदि प्रश्नकर्ता शूद्रस्तदा कस्यचित्फलस्य नाम ग्राहयेत् ॥७॥

अथवा प्रश्नकर्ता के मुख से जो अक्षर निकले—उसी से पिण्ड बनावे। यदि प्रश्न में बहुत अक्षर बोले—अथवा अस्पष्ट (साफ नहीं) हो तो फिर ऐसा करे कि—प्रश्नकर्ता ब्राह्मण हो तो उससे किसी फूल का नाम, क्षत्रिय हो तो नदी का नाम, वैश्य हो तो देवता के नाम, यदि शूद्र हो तो किसी फल का नाम ग्रहण करावे ॥ ६-७ ॥

इस प्रकार पिण्ड बनाने के लिये वर्ण और स्वरों के ध्रुवाङ्क—

12 21 11 18 15
अर्का प्रकृतिरीशानो धृतिः पञ्चदशैव हि ।
22 18 32 25 19
जातिरष्टादश रुद्रास्तत्त्वान्येकोनविंशतिः ॥८॥
25 13 11 21 30 10 15
तत्त्वं विश्वे भवा एकविंशतिः खाऽग्निदिक्तिथिः ।
21 23 26
मूर्च्छना रामनेत्राणि ततः षड्विंशतिः स्मृतः ॥९॥
26 10 13 22 35
षड्विंशदश त्रिविश्वेऽक्षि-नेत्र-पञ्चगुणास्तथा ।
45 14 18 15 13 35
पञ्चाब्धिमनुधृत्यष्टि-रामेन्दुशरवह्नयः ॥१०॥
28 18 26 27 86
वस्वक्षिधृतिषड्विंशतारकाः षड्गजास्तथा ।
16 13 13 35
कला विश्वेत्रिचन्द्राश्च बाणरामास्तथा स्मृताः ॥११॥

26 35 35 12

ऋत्वक्षिशररामाश्च वाणरामास्तथा इनाः ।
अकारादिहकारान्तवर्णानां तु ध्रुवाः स्मृता ॥१२॥

ये अंक (१२) अकारादि हकारान्त सब अक्षरों के ध्रुवं हैं।

अथ स्पष्टार्थं चक्र—स्वरध्रुवाङ्क चक्रम्

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
१२	२१	११	१८	१५	२२	१८	३२	२५	१६	२५

अथ व्यञ्जनध्रुवाङ्क चक्रम्

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	ट्
१३	११	२१	३०	१०	१५	२१	२३	२६	२८	१०
ठ्	ड	ढ्	ण्	त्	थ्	द्	ध्	न्	प्	फ्
१५	२२	३५	४५	१४	१८	१७	१३	२५	२८	१८
ब्	भ्	म्	य्	र्	ल्	व्	श्	ष्	स्	ह्
२६	२७	८६	१६	१३	१३	३५	२६	[illegible]	३१	१२

उदाहरण—जैसे किसी ब्राह्मण ने प्रश्न किया तो उससे पुष्प का नाम ग्रहण करवाने से 'गुलाव' का नाम लिया। अतः (ग=२१, उ=१५,-ल=१३, आ=२१, व=३६, अ=१२) वर्ण और स्वर के सब ध्रुवों का योग १०८ यह पिण्ड हुआ।

लाभ प्रश्न विचार —

लाभाऽलाभे द्विचत्वारि ४२ क्षेपो भागास्त्रिभिः स्मृतः ।
एकशेषे च लाभः स्याद् द्विशेषे स्वल्पलाभकः ॥१३॥
शून्यशेषे तु हानिः स्याल्लाभालाभस्य लक्षणम् ।

लाभालाभ का प्रश्न हो तो पिण्ड में ४२ जोड़कर ३ के भाग देने से १ शेष में लाभ, २ में अल्प लाभ, ० में हानि समझना ॥१३॥

जय-पराजय प्रश्नविचार

जयाऽजये क्षेपकस्तु चतुस्त्रिंशत्प्रकीर्तितः ॥१४॥

रामैर्भागं समाहृत्य एकशेषे जयं वदेत् ।
द्वाभ्यां सन्धिं वदेत् प्राज्ञः शून्यशेषे पराजयः ॥१५॥

जय-पराजय का प्रश्न हो तो पिण्ड में ३४ जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में जय, २ में सन्धि, ० में पराजय कहना चाहिये ॥

सुख-दुःख प्रश्न विचार

सुख-दुःखे क्षेपकस्तु अष्टरामाः स्मृतो बुधैः ।
अत्र भागो लोचनाभ्यामेकशेषे सुखं भवेत् ॥१६॥

सुख-दुःख का प्रश्न हो तो पिण्ड में ३८ जोड़कर २ के भाग देने से १ शेष में सुख, ० में दुःख समझना चाहिये ॥१६॥

गमन प्रश्न —

शून्ये दुःखं विजानीयात्सुखदुःखस्य लक्षणम् ।
गमने रामरामाश्च क्षेपकः परिकीर्तितः ॥१७॥
त्रिभिर्भागं समाहृत्य एक शेषे गमः स्मृतः ।
द्वाभ्यां स्थितिर्विनिर्देश्या शून्ये मार्गान्निवर्तनम् ॥१८॥

गमन प्रश्न में पिण्ड मे ३३ जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में गमन, २ में स्थिति (अर्थात् गमन नहीं) और शून्य शेष में यात्रा करके मार्ग से ही लौटना पड़े ॥ १७-१८ ॥

जीवन-मरण-प्रन —

जीवने मरणे क्षेपश्चचत्वारिंशत्प्रकीर्तितः ।
अत्र भागस्त्रिभिर्ग्राह्यः शेषाङ्केन फलं स्मृतम् ॥१९॥
एकेन जीवनं वाच्यं कष्टसाध्यं द्विशेषके ।
शून्ये तु मरणं प्रोक्तं ज्ञातव्यं सर्वदा बुधैः ॥२०॥

जीवन-मरण के प्रश्न में—पिण्ड में ४० क्षेपक जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में जीवन, २ में कष्ट से जीवन और ० शेष मे मरण फल कहना चाहिये ॥ १९-२०॥

तीर्थ यात्रा प्रश्न —

यात्राप्रश्ने क्षेपकस्तु नवरामभितः स्मृतः।
रामैर्भागं समाहृत्य यात्रा स्यादेकशेषके ॥२॥
द्विशेषे मध्यमा ज्ञेया न यात्रा शून्यशेषके।

तीर्थ यात्रा सम्बन्धी प्रश्न में ३९ क्षेपक पिण्ड में जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में उत्तम यात्रा, २ में अल्प स्थान में यात्रा और शून्य शेष मे यात्रा नहीं होती है ॥२१॥

वर्षा प्रश्न —

द्वात्रिंशद्वर्षणप्रश्ने क्षेपकः कथितो, बुधैः ॥२२॥
वह्निभिर्विभजेद्धीमानेकशेषे प्रवर्षणम्।
द्वाभ्यां तु मध्यमा वृष्टिरनावृष्टिः खशेषके ॥२३॥

वर्षा का प्रश्न हो तो पिण्ड में ३२ जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में पूर्ण वर्षा, २ में मध्यम और शून्य शेष में वर्षा नहीं होती है, ऐसा समझना ॥२२–२३॥

गर्भविचार प्रश्न—

गर्भप्रश्ने क्षेपकस्तु षड्विंशत्कथितो बुधैः।
त्रिभिर्भागं समाहृत्य गर्भो भूशेषके स्मृतः ॥२४॥
सन्देहस्तु द्विशेषे स्याच्छून्ये नास्तीति निश्चयः।

गर्भ है या नहीं ? ऐसे प्रश्न में—पिण्ड में २६ जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में गर्भ है, २ में सन्देह और शून्य शेष में गर्भ नहीं है, ऐसा कहना चाहिये ॥२४॥

मूक (मानसिक) प्रश्न —

पिण्डाङ्कं त्रिभिर्विभज्यैकेन जीवः।
द्वाभ्यां धातुः। शून्येन मूलम् ॥२५॥

मानसिक प्रश्न में केवल पिण्ड में ३ के भाग से १ शेष में जीव, २ में धातु और शून्य में मूल सम्बन्धी प्रश्न समझना ॥२५॥

जीव के भेद ज्ञान—

जीवे दृष्टे जीवाश्चतुर्विधाः। पिण्डस्य चतुर्भागावशेषात् एकेन द्विपदः। द्वाभ्यां चतुष्पदः। त्रिभिर्बहुपदः। चतुर्भिरपदः। तत्र द्विपदे त्रयो भेदाः। आलिंगिते पुरुषाः, अभिधूमिते नारी। दग्धे नपुंसकः ॥२६॥

उपरोक्त विधि से जीव प्रश्न हो तो उसके द्विपद आदि ४ भेद हैं। इस लिए पिण्ड में ४ के भाग देने से १ शेष में द्विपद, २ में चतुष्पद, ३ में बहुपद और शून्य में अपद (सर्प आदि) समझना। द्विपद के पुरुष आदि ३ भेद हैं। यदि आलिंगित प्रश्न हो तो पुरुष, अभिधूमित हो तो स्त्री और दग्ध हो तो नपुंसक समझना ॥२६॥

धातु भेद —

धातवो द्विविधा। धाम्या, अधाम्याश्च। तत्र द्वाभ्यां भागः, एकेन धाम्याः, द्वाभ्यामधाम्याः ॥२७॥

धातु के धाम्य, अधाम्य दो भेद हैं। पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में धाम्य (सोना, चाँदी आदि) और शून्य में अधाम्य (मोती, हीरा, पाषाण आदि) कहना ॥२७॥

धाम्य धातुओं के भेद —

धाम्या अष्टविधाः सुवर्ण-रजत-ताम्र-कांस्य-पित्तल-रंग-सीस-लोहाख्याः। तत्र अष्टभिर्भागः, एकेन सुवर्णम्। द्वाभ्यां रजतम्। त्रिभिस्ताम्रम्। चतुर्भिः कांस्यम्। पञ्चभिः पित्तलम्। षड्भिः रंगः। सप्तभिः सीसकम्। अष्टभिर्लोहम्। तत्रापि भेदद्वयम्। घटितमघटितं च। तत्र द्वाभ्यां भागः। एकेन घटितम्। द्वाभ्यामघटितम् ॥२८॥

सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, पीतल, राँगा, सीसा, लोहा—ये धातु के ८ भेद हैं। पिण्ड में ८ के भाग से १ शेष में सोना, २ में चाँदी, ३ में ताँबा ४ में काँसा, ५ में पीतल, ६ में राँगा, ७ में सीसा और शून्य शेष में लोहा कहना चाहिये। उसमें घटित [गढ़ा हुआ] और अघटित [बिना गढ़ा हुआ] दो भेद हैं। पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में घटित और शून्य में अघटित समझना चाहिये ॥२८॥

मूलं चतुर्विधम्। वृक्ष–गुल्म–वल्ली–लताभेदात्। तत्र चतुर्भिर्विभज्यैकेन वृक्षः। द्वाभ्यां गुल्मः। त्रिभिर्वल्ली, (कूष्माण्डक-सिंहराटादयः)। चतुर्भिर्लता (तृण-धान्य-दूर्वा-गोधूमाः) इति। तत्रापि द्विविधाः भक्ष्यमभक्ष्यं च। तत्र पिण्डाङ्के द्वाभ्यां भक्ते एकेन भक्ष्यम्। द्वाभ्यामभक्ष्यम्। तत्रापि द्विविधं सुगन्धि-दुर्गन्धिभेदात्। प्रश्नपिण्डाङ्के द्वाभ्यां भक्ते, एकेन सुगन्धिः, द्वाभ्यां दुर्गन्धिः ॥२९॥

मूल सम्बन्धी प्रश्न हो तो उसके ४ भेद हैं। वृक्ष, गुल्म, बल्ली और लता। पिण्ड में ४ के भाग से १ शेष में वृक्ष (आम, कटहर आदि), २ में गुल्म, ३ में बल्ली (कोहड़ा आदि की लती) और शून्य शेष में लता (तृण, धान्य, गेहूँ आदि) समझना। उनके भक्ष्य-अभक्ष्य से दो भेद हैं। पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में भक्ष्य, शून्य में अभक्ष्य। फिर भी सुगन्धि और दुर्गन्धि ये २ भेद हैं। पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में सुगन्धि, शून्य में दुर्गन्धि समझना ॥२९॥

मूल के भेद जानने का दूसरा प्रकार —

शिरस्पर्शे वृक्षः। उदरस्पर्शे गुल्मः। पृष्ठे बल्ली। बाहुस्पर्शे लता। पादे कन्दः ॥३०॥

मस्तक स्पर्श करता हुआ पूछे तो वृक्ष, पेट स्पर्श करके पूछे तो गुल्म, पीठ के स्पर्श से बल्ली, बाँह के स्पर्श से लता और पैर के स्पर्श से कन्द समझना ॥३०॥

नष्टवस्तुज्ञान—

खे निरीक्षिते पृच्छति सति नष्टवस्तु खे कथनीयम्। अधोनिरीक्षितेऽधो वक्तव्यम्। कोणे प्रविश्य पृच्छति कोणे वक्तव्यम्। यस्मिन्दिशि प्रविश्य यत्रावलोकयेत् यदह्नि वा तदह्नि नष्टप्राप्तिर्वाच्या ॥३१॥

प्रश्नकर्ता आकाश (ऊपर) देखता हुआ पूछे तो नष्ट वस्तु पृथ्वी से ऊपर रखी हुई, नीचे देखता हुआ पूछे तो पृथ्वी में गाड़ी हुई है, ऐसा कहना। कोण में प्रवेश करके पूछे तो नष्ट वस्तु कोण में समझना। जिस दिशा से प्रवेश कर, जिस तरफ देखता हुआ पूछे उसी तरफ नष्ट वस्तु को कहना और जिस दिन पूछे उसी वार में नष्ट वस्तु की प्राप्ति कहना ॥३१॥

प्रकारान्तर —

प्रश्नध्रुवाङ्के द्वादशभिर्भक्ते शेषांका मेषादिराशयो ज्ञातव्याः, मेषे ग्रामे, वृषे क्षेत्रे, मिथुने चतुष्पथे, कर्के रसातले, सिंहेऽन्तरिक्षे, कन्यायां शून्यागारे, तुले पथि, वृश्चिके गृहे, धनुषि ग्रामे, मकरेऽन्तरिक्षे, कुम्भे तडागे, मीने नदीतीरे, गङ्गायां वा इति ॥३२॥

प्रश्न ध्रुवाङ्क (पिण्ड) में १२ का भाग देकर १ आदि शेष से मेषादि १२ राशि समझना। मेष से ग्राम में, वृष से खेत में, मिथुन से चौराहे पर, कर्क से रसातल (खात) में, सिंह से पृथ्वी से ऊपर, कन्या से शून्य घर में, तुला से मार्ग में, वृश्चिक से घर में, धनु से ग्राम में, मकर से आकाश में, कुम्भ से तालाब में और मीन से नदी (गङ्गा आदि) में नष्ट वस्तु समझना चाहिये ॥३२॥

मानसिक चिन्ता प्रश्न —

प्रश्नाक्षरध्रुवांके द्वादशभिर्भक्ते शेषांके राशयो ज्ञातव्याः । मेषे द्विपदम्, वृषे चतुष्पदम्, मिथुने युग्मम्, कर्के व्यापारः, सिंहे राजचिन्ता, कन्यायां विवाहचिन्ता, तुलायां धातुः, वृश्चिके रोगः, धनुषि लाभः, मकरे कलहः, कुम्भे गर्भः, मीने स्थानचिन्ता, इति चिन्ताप्रश्नः ॥३३॥

पिण्ड में १२ के भाग से १ आदि शेष में मेषादि राशि समझना। मेष से द्विपद, वृष से चतुष्पद, मिथुन से युग्म (स्त्री और पुरुष), कर्म से व्यापार, सिंह से राजसम्बन्धी, कन्या से विवाह सम्बन्धी, तुला से धातु, वृश्चिक से रोग, धनु से लाभ, मकर से झगड़ा, कुम्भ से गर्भ और मीन से स्थान सम्बन्धीं चिन्ता कहना चाहिए ॥ ३३ ॥

कार्यावधि प्रश्न —

आलिङ्गिते दिनं प्रोक्तं मासः स्यादभिधूमिते ।
दग्धे च वत्सरं प्रोक्तं मूलदेवेन भाषितम् ॥ ३४ ॥

आलिङ्गित प्रश्न हो तो दिन (याने १ महीने से अल्प कुछ दिनों में ही काम होगा), अभिधूमित हो तो कुछ मासों में याने १ वर्ष के भीतर ही) और दग्ध प्रश्न हो तो कुछ वर्षों मे कार्य-सिद्धि होगी, ऐसा कहा ॥ ४० ॥

प्रकारान्तर—

तिथिवारर्क्षयोगस्तु विघ्नः षड्भिर्युतस्तथा ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेत् ॥ ३५ ॥
एकेन पक्षो द्वितयेन मासा ऋतुस्त्रिभिः स्यादयनं चतुर्भिः ।
क्रमादिनं रात्रिरथाऽपि यामघटीपलाद्यानि निवेदितानि ॥३६॥

तिथि, वार, नक्षत्र और योग संख्या जोड़ कर उसमे ६ मिला कर ९ का भाग देने से १ शेष से पक्ष, २ से मास, ३ से ऋतु, ४ से अयन, ५ से

दिन, ६ से रात्रि, ७ से पहर, ८ से घटी और शून्य से पलमात्र कार्य-सिद्धि का समय समझना ॥ ३५-३६ ॥

तेजी-मन्दी प्रश्न—

१२ प्रश्नपिण्डाङ्के त्रिभिर्भक्ते। एकेन समर्घम्,
द्वाभ्यां समता, शून्येन महर्घम् ॥ ३७ ॥

पिण्ड में ३ के भाग से १ शेष में सस्ता (मन्दी), २ में समान और शून्य में महँगी (तेजी) समझा ॥ ३७ ॥

जयपराजय—

आलिङ्गितेन जयः, अभिधूमितेन सन्धिः दग्धेन भङ्ग।
पिण्डाङ्के त्रिभिर्भक्ते, एकेनजयः, द्वाभ्यांसन्धिः, शून्येनभङ्ग।
दक्षिणे पृच्छति जयः, वामे पराजयः, सम्मुखे सन्धिः,
पृष्ठे मरणम्, इति भणितं मूलदेवेन ॥ ३८ ॥

जय पराजय सम्बन्धी प्रश्न में आलिङ्गित प्रश्न हो तो जय, अभिधूमित हो तो सन्धि और दग्ध प्रश्न हो तो पराजय कहना। अथवा पिण्ड में ३ के भाग से १ शेष में जय, २ में सन्धि, शून्य में पराजय। अथवा दाहिने भाग में होकर पूछे तो जय, बाये भाग से पराजय, सम्मुख होकर पूछे तो सन्धि और पीछे से पूछे तो मरण कहना चाहिये ॥ ३८ ॥

सत्यासत्य—

पिण्डाङ्के द्वाभ्यां भक्ते एकेन सत्यं, द्वाभ्यामसत्यम् ॥३९॥

यह बात सत्य है या असत्य ? ऐसे प्रश्न में पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में सत्य और शून्य में असत्य कहना ॥ ३९ ॥

पुरुष-स्त्री-ज्ञान-प्रश्न

प्रश्नवर्णाक-मात्रांक-स्तिथि-वारर्क्ष-संयुतः।
सप्तभक्ताऽवशेषेण समे स्त्री विषमे पुमान् ॥४०॥

प्रश्न के वर्ण और स्वर के ध्रुवाङ्क में तिथि, नक्षत्र और वार की संख्या जोड़कर ७ के भाग से सम (२, ४, ६) शेष में स्त्री और विषम (१, ३, ५, ०) में पुरुष समझना ॥ ४० ॥

गर्भज्ञान प्रश्न—

वारस्त्रिगुणितः कार्यस्तिथिभिश्चैव संयुतः ।
द्वाभ्यां भक्ते च यच्छेषं विषमेऽस्ति समे न हि ॥४१॥

रव्यादि वार संख्या को ३ से गुणा कर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से तिथि संख्या मिलावे, उसमें २ के भाग से १ शेष में गर्भ है, २ में नहीं है, ऐसा कहना ॥ ४१ ॥

पुत्र कन्या जन्म प्रश्न—

तिथि-वारर्क्ष-योगानां योगो नामाऽक्षरैर्युतः ।
सप्तभक्ताऽवशेषेण समे कन्याऽसमे सुतः ॥४२॥

तिथि, वार, नक्षत्र और योग की संख्याओं के योग में प्रश्नकर्ता के नाम की अक्षर संख्या जोड़ कर ७ के भाग से सम (२, ४, ६) शेष में कन्या और विषम शेष में पुत्र का जन्म कहना ॥ ४२ ॥

अथवा—

प्रश्नपिण्डांके त्रिभिर्भक्ते एकेन पुत्रः, द्वाभ्यां कन्या, शून्ये नास्ति गर्भः । वा ओष्ठ-कण्ठ-ग्रीवा-ललाट-कर्ण-शीर्ष-नखान् स्पृष्ट्वा पृच्छति तदा पुत्रजन्म, नाभि-हस्त-पाद-हृदयानि स्पृष्ट्वा पृच्छति तदा कन्याजन्म इति ॥४३॥

प्रश्न पिण्ड में ३ के भाग से १ शेष में पुत्र, २ में कन्या और शून्य शेष में गर्भ का अभाव कहना । अथवा ओठ, कण्ठ, गला, ललाट, कान, मस्तक और नख का स्पर्श करके पूछे तो कन्या का जन्म कहना ॥ ४३ ॥

स्वकीय परकीय गर्भज्ञान—

योगः पञ्चगुणः कार्यो वारेण विनियोजयेत् ।
रामैर्भक्ते तु यच्छेषमेकस्तु स्वतनूद्भवः ॥४४॥
द्वाभ्यामन्याद्विजानीयात् विशेषे च स्ववीर्यजः ॥४५॥

विष्कुम्भादि योग संख्या में वार की संख्या जोड़कर ३ के भाग से १ शेष में स्वकीय और २ में परकीय और शून्य शेष में स्वकीय वीर्य से गर्भ समझना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

विवाह प्रश्न—

प्रश्नपिण्डाङ्के अष्टभर्भिक्ते, एकेनाऽनायासेन विवाहः, द्वाभ्यां कष्टेन विवाहः, त्रिभिर्नास्ति, चतुर्भिः कन्यामरणम्, पञ्चभिः पितृव्यादिमरणं वा देशान्तरे गमनं, षड्भिः नृपाद्भीतिः, सप्तभिर्द्वयोर्मरणं वा श्वशुरमरणम्, अष्टभिः सन्ततिमरणम्, इति विवाहचिन्ता ॥४६॥

पिण्ड में ८ से भाग देकर १ शेष में विना यत्न से, २ में अधिक यत्न से विवाह कहना । ३ शेष में विवाह नहीं हो, ४ शेष में कन्या का मरण, ५ में चाचा का मरण, ६ में राजभय, ७ में वर-कन्या दोनों का मरण वा श्वशुर का मरण, ८ याने० शेष हो तो विवाह से सन्तान का मरण कहना ॥ ४६ ॥

जीवन मरण प्रश्न—

वर्णपिण्डं द्विगुणितं मात्रापिण्डं चतुर्गुणितं तत्र समुदाये त्रिभिर्भक्ते—एकेन जीवनं, द्वाभ्यां पीडा, शून्येन मरणम् । आलिङ्गिते दिनम्, अभिधूमिते मासः दग्धे वत्सरः ॥४७॥

प्रश्नाक्षरों से वर्णपिण्ड बनाकर उसको दूना करके उसमें चतुर्गुणित मात्रा पिण्ड जोड़ कर ३ के भाग से १ शेष में जीवन, २ में पीड़ा और

शून्य में मरण कहना चाहिये। मरण का समय—आलिङ्गित प्रश्न हो तो कुछ दिनों में, अभिधूमित हो तो कुछ मासों में और दग्ध हो तो वर्ष के बाद मरण कहना ॥ ४७॥

हाथी आदि सवारी प्राप्ति सम्बन्धी प्रश्न—

स्ववर्णास्त्रिगुणाः कार्या वस्तुणैंक्यरूपयुक् ।
द्विहृतं शेषतो ब्रूयाच्छून्ये लाभोऽन्यथा न हि ॥४८॥

प्रश्नकर्ता के नामाक्षरों की संख्या को ३ से गुणा कर उसमें वस्तु की नामाक्षर संख्या जोड़ कर १ और मिलावे फिर उसमें २ के भाग देने से शून्य शेष बचे तो वस्तु का लाभ होगा, १ शेष बचे तो नहीं लाभ हो, ऐसा कहना ॥ ४८ ॥

अमुक व्यक्ति से लाभ होगा या नहीं ? इस प्रकार का प्रश्न—

प्रश्नोर्नाम गुणैर्हन्यात् स्ववर्णैर्मिश्रितं हरेत् ।
रामैः प्राप्तिर्विजानीयादेकशेषे द्विके न हि ।
विशेषे चिरकालेन द्रव्यप्राप्तिर्भविष्यति ॥४९॥

जिससे द्रव्य लाभ का प्रश्न करे उसके नामाक्षरों की संख्या को ३ से गुणा कर प्रश्नकर्ता के नामक्षर मिलावे, उसमें ३ के भाग से १ शेष में शीघ्र लाभ, २ में नहीं और शून्य शेष में विलम्ब से लाभ समझना ॥ ४९ ॥

द्रव्य लाभ प्रमाण प्रश्न—

तन्नामवर्णसंख्याया हत्वा नन्दैर्युताः शरैः ।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्के दशकाः स्मृताः ॥५०॥
जानीयात् तावतीं प्राप्तिं कुलमानानुसारतः ॥५१॥

प्रश्नकर्ता के नामाक्षरों की संख्या को ९ से गुणा कर ५ जोड़े, उसमें ७ के भाग से शेष तुल्य दशक समझना। अर्थात् १ शेष में १०, २ में २० इत्यादि। उतनी प्राप्ति की संख्या कुल और व्यवसाय के अनुसार सैकड़ा, हजार, लाख आदि समझना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

किसी पुस्तक में "लब्धं पञ्चगुणं" इत्यादि असङ्गत पाठ प्रक्षिप्त है।

दूताऽऽगमन प्रश्न—

तिथिस्त्रिगुणिता कार्या पञ्चयुक्तारमिश्रिता ॥५२॥
सप्तभिर्गुणिता द्वाभ्यां भक्तशेषे फलं वदेत् ।
एकेन चलितो दूतः शून्यशेषे तु निश्चलः ॥५३॥

त्रिगुणित तिथि संख्या में ५ जोड़ कर वार की संख्या मिलावे। उसे ७ से गुणा कर २ के भाग से १ शेष में दूत आ रहा है, और शून्य में नहीं, ऐसा कहना ॥ ५२-५३ ॥

परदेशी के आगमन सम्बन्धी प्रश्न—

तिथि-वस्त्रौ तथा लग्नं नामाक्षरसमन्वितम् ।
नक्षत्रकरणं चैव सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥५४॥
एकेन तत्र वासश्च द्वाभ्यां च गमनं भवेत् ।
तृतीये चाऽर्द्धमार्गे तु चतुर्थे ग्रामसन्निधौ ॥५५॥
पञ्चमे पुनरावृत्तिः षष्ठे व्याधिसमाकुलः ।
सप्तमे शून्यकार्यः स्यात् प्रश्नश्च कथितो बुधैः ॥५६॥

तिथि, वार, नक्षत्र, करण और लग्न संख्या में परदेशी के नामाक्षर संख्या मिलावे, उसमें ७ के भाग से १ शेष में परदेशी जहाँ रहता है उसी स्थान में है, २ में चला, ३ में आधे मार्ग में, ४ में ग्राम के समीप में, ५ में चल कर फिर लौट गया, ६में रोगयुक्त और शून्य शेष में कार्य नहीं हुआ है, ऐसा कहना ॥ ५४-५६ ॥

किसी से भेंट का प्रश्न—

घटिकास्त्रिगुणाः सैकाः सप्तभिः संयुताः पुनः ।
वेदैश्च भाजितास्तत्र शेषांके फलमादिशेत् ॥५७॥
एकशेषे च मिलनं द्वाभ्यां च गमनान्तरे ।

त्रिशेषे दर्शनाभावः समुद्रैः क्लेशकृद्भवेत् ॥५८॥

इष्ट घड़ी में १ जोड़कर ३ से गुणा करे फिर उसमें ७ जोड़कर ४ के भाग देने से १ शेष में भेंट होगी, २ में वहाँ जाने पर भेंट होगी, ३ में भेंट नहीं होगी और ४ में बहुत यत्न से भेंट होगी, ऐसा कहना ॥ ५७-५८ ॥

अमुक व्यक्ति क्या कर रहा है? ऐसा प्रश्न—

तिथिवारर्क्षयोगानां योगो द्विघ्नस्त्रिभिर्युतः ।
ततो द्वादशभिर्भाज्यः शेषे च फलमादिशेत् ॥५९॥

तिथि, वार; नक्षत्र और योग की संख्याओं के योग को २ से गुणाकर ३ मिलावे, उसमें १२ के भाग से १ आदि शेष से निम्नलिखित फल कहे ॥५९॥

हास्ययुक्तः स्थितो भूम्यां स्वस्थासनयुतो जनैः ।
ताम्बूलाद्युपचारैश्च ह्येक शेषे फलं वदेत् ॥६०॥

१ शेष बचे तो अपने साथियों के साथ बैठकर हास्य युक्त ताम्बूल (पान) आदि का सेवन कर रहा, ऐसा कहना ॥ ६० ॥

व्यायामेन युतश्चापि स्वल्पमानवमिश्रितः ।
उद्वेगवार्ताश्रवणं द्विशेषे दर्शनं फलम् ॥६१॥

२ शेष में थोड़े आदमियों के साथ व्यायाम कर रहा है, परन्तु कुछ उद्वेगकारक वार्ता भी सुन रहा है ॥ ६१ ॥

कुपितः स्वासनेस्थोऽपि चिन्तयन् मनसाऽस्ति सः ।
पश्चात् कार्यप्रसङ्गेन गमनं च त्रिशेषके ॥६२॥

३ शेष बचे तो अपने स्थान पर बैठा कुछ सोच रहा है, फिर कार्यवश कहीं चलने वाला है ॥ ६२ ॥

वेदशेषे तु सुप्तः स्याज्जलेन मुखशुद्धिकृत् ।
पञ्चशेषे तु सुप्तः सन्नुत्थितो भोजनं भवेत् ॥६३॥

४ शेष में जल से मुँह धो रहा है। ५ शेष में सोकर उठा है, कुछ खा रहा है, ऐसा कहना ॥ ६३ ॥

रसशेषे मार्गमध्ये दर्शनं निश्चितं भवेत्।
स्त्रीभोगव्यवहारं च सप्तशेषे विनिर्दिशेत् ।६४।

६ शेष बचे तो मार्ग में है, इस समय मुलाकात हो सकती है और ७ शेष बचे तो स्त्री के साथ क्रीड़ादि कर रहा है, ऐसा कहना ॥ ६४ ॥

अष्टशेषे यदा तस्य चित्तोद्वेगस्तदा भवेत्।
नन्दशेषे यदा दृष्टे धर्मकार्येषु तत्परः ।६५।

८ शेष बचे तो मन में उद्वेग हो रहा है, ९ शेष में कार्य में तत्पर है, ऐसा कहना ॥६५॥

दशमे राजसम्मानं रुद्रे भोजनमेव च।
द्वादशे दुःखितः किन्तु स्त्रीभोगं कर्तुमिच्छति ।६६।

१० शेष से राजदरबार में सम्मान पा रहा है, ११ शेष से भोजन कर रहा है, और शून्य शेष से दुखी है, परञ्च स्त्री से मिलना चाहता है, ऐसा कहना ॥६६॥

नष्ट जातक विधान—

वर्णध्रुवा द्विगुणिता मात्राणां ध्रुवसंयुताः।
एवं कालविचारोऽयं मूलदेवेन भाषितम् ॥६७॥

तत्र ध्रुवाङ्कसमुदाये १०८ भक्ते शेषे वर्षः। तत्रैवाक्षरपिण्डे द्वाभ्यां भक्ते एकेन शुक्लपक्षः, द्विशेषे कृष्णपक्षः ॥ तत्रैवाक्षर-पिण्डे सप्तविंशतिभक्ते एव शेषेऽश्विनी, द्विशेषे भरणीत्येवं नक्षत्राणि ज्ञातव्यानि ॥

अज्ञात जन्म समय वाला नष्ट जन्म पत्र बनाने का प्रश्न करे तो पूर्ववत् वर्ण ध्रुवांक को २ से गुणा कर उसमें मात्रा ध्रुवांकों को जोड़ कर पिण्ड

बनावे। उसमें १०८ के भाग देकर शेष गत वर्ष समझे। उसी पिण्ड में २ के भाग से १ शेष में शुक्ल, २ में कृष्ण पक्ष समझे। उसी पिण्डाङ्क में २७ के भाग से १ आदि शेष से अश्विनी आदि जन्म के नक्षत्र समझे ॥६७॥

तत्रैव पिण्डे त्रिंशद्भक्ते शेषमंशाः ॥ तत्रैव पिण्डे द्वादशभक्ते शेषेण एकेन फाल्गुनः, द्वाभ्यां चैत्रः, त्रिभिर्वैशाखः, चतुर्भिर्ज्येष्ठः, पञ्चभिराषाढः, एवं श्रावणादयो बोध्याः ॥ एवं तत्रैव पिण्डे द्वादशभक्ते एकेन मेषः, द्वाभ्यां वृषः, त्रिभिर्मिथुनमित्यादिक्रमेण लग्नानि ज्ञातव्यानि ॥६८॥

उसी पिण्ड में ३० के भाग देकर १ आदि शेष से अंश समझे। उसी पिण्ड में १२ के भाग देकर १ आदि शेष में क्रम से फाल्गुन, चैत्र आदि मास समझना। फिर उसी पिण्ड में १२ के भाग से १ आदि शेष से मेष आदि लग्न जन्म समय का समझकर नष्ट जन्म-पत्र बनाना चाहिये ॥६८॥

इति केरलप्रश्नसंग्रहे पूर्वभागः।

अथोत्तरार्धम्

ध्वजादि आय द्वारा शुभाशुभ फल—

भूतादिविविधान् प्रश्नान् कथयिष्यामि संग्रहे।
आयप्रश्नाख्यमध्यायं चमत्कृतिकरं परम् ॥१॥

अब भूत, भविष्य और वर्तमान फल समझने में चमत्कारयुक्त ध्वजादि आयवश फलाध्याय को कहता हूँ ॥ १ ॥

उच्चारितफलनाम्नो वर्णक्रमतो ध्वजादयोऽष्टाऽऽयाः।
प्रश्नाक्षरतोऽप्यथवा विकल्पनीया बुधैर्नित्यम् ॥२॥

प्रश्नकर्ता के मुख से कथित फलादि नाम के आदि अक्षर से अवर्गादि क्रम से ध्वज आदि ८ आय समझना ॥ २ ॥

आयों के नाम—

ध्वजो धूम्रश्च सिंहश्च श्वानो वृष-खरौ गजः ।
ध्वांक्षश्चाऽऽयाष्टकं ज्ञेयं शुभाऽशुभफलं क्रमात् ॥३॥

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज, और ध्वांक्ष ये क्रम से ८ आयों के नाम हैं ॥ ३ ॥

इन (ध्वजादि आयों) के स्वामि—

ध्वजे सूर्यश्च विज्ञेयः धूम्रे भौमस्तथैव च ।
सिंहे शुक्रश्च विज्ञेयः श्वाने सौम्यस्तथैव च ॥४॥
वृषे गुरुश्च विज्ञेयः खरे सूर्यसुतस्तथा ।
गजे ध्वांक्षे चन्द्र-राहू एते च पतयः स्मृताः ॥५॥

ध्वज के सूर्य, धूम्र के मङ्गल, सिंह के शुक्र, श्वान के बुध, वृष के गुरु, खर के शनि, गज के चन्द्रमा और ध्वांक्ष के राहु स्वामी हैं ॥ ४-५ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

ध्वज	धूम्र	सिंह	स्वान	वृष	खर	गज	ध्वांक्ष	आय नाम
२	२	३	४	५	६	७	८	
अ	क	च	ट	त	प	य	श	अकारादिवर्ग.
इ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष	
उ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स	
ए	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह	
ओ	ङ	ञ	ण	न	म	०	०	
सूर्य	मंगल	शुक्र	बुध	बृह.	शनि	चन्द्र	राहु	स्वामी

इस प्रकार प्रश्नाक्षर से आय समझ कर शुभाशुभ फल—

ध्वज-कुञ्जर-सिंहेषु वृषे सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे कार्यसिद्धिर्भवेन्नहि ॥६॥

प्रश्न के आदि अक्षर से ध्वज, गज, सिंह, वृष हो तो कार्य की सिद्धी और ध्वांक्ष, श्वान, खर, धूम्र से असिद्धि समझना ॥ ६ ॥

कोई चीज है या नहीं ? इस प्रकार के प्रश्न में—

ध्वज-कुञ्जर-सिंहेषु वृषे चाऽस्ति विनिश्चितम् ।
ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे नाऽस्तीति समुदाहृतम् ॥७॥

ध्वज, गज, सिंह वृष आय होते हैं । ध्वांक्ष, श्वान, धूम्र, खर आय हो तो नहीं हैं, ऐसा कहना चाहिए ॥ ७ ॥

लाभालाभ प्रश्न—

ध्वजे गजे वृषे सिंहे शीघ्रलाभो भवेद्ध्रुवम् ।
ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे नाशश्च कलहप्रदः ॥८॥

ध्वज, गज, वृष, सिंह हो तो लाभ, यदि ध्वांक्ष, श्वान, खर, धूम्र हो तो हानि और कलह कहना चाहिए ॥ ८ ॥

ध्वजे गजे वृषे सिंहे नष्टलाभो भवेद्ध्रुवम् ।
ध्वांक्षे धूम्रे खरे श्वाने हानिर्भवति निश्चितम् ॥९॥

ध्वज, गज, वृष, सिंह हो तो नष्ट वस्तु का लाभ, ध्वांक्ष, धूम्र, खर, श्वान हो तो लाभ नहीं हो, ऐसा कहना ॥ ९ ॥

चौर जाति ज्ञान—

ध्वजे च ब्राह्मणश्चौरो धूम्रे क्षत्रिय एव च ।
सिंहे वैश्यश्च विज्ञेयः खरे च सेवकस्तथा ॥१०॥
गजे दासी च विज्ञेयाध्वांक्षे च नायकस्तथा ।
वृषे श्वाने तथा ज्ञेयश्चौरश्चाऽन्त्यजसम्भवः ॥११॥

ध्वज आय से ब्राह्मण, धूम्र से क्षत्रिय, सिंह से वैश्य, खर से शूद्र (सेवक), गज से दासी, ध्वांक्ष से मालिक ही को चोर समझना और वृष, श्वान आय हो तो नीच जाति को चोर समझना ॥ १०-११ ॥

नष्ट वस्तु का दिक्ज्ञान—

ध्वजे पूर्वगतं चैव धूम्रे आग्नेयदिग्गतम् ।
सिंहे च दक्षिणे वस्तु श्वाने नैऋत एव च ॥१२॥
पश्चिमे वृषभे ज्ञेयं वायव्यां च खरे तथा ।
उत्तरे कुञ्जरे द्रव्यमीशान्यां ध्वांक्षके तथा ॥१३॥

ध्वज आय में पूर्व, धूम्र में अग्निकोण, सिंह में दक्षिण, श्वान में नैऋत्य कोण, वृष में पश्चिम, खर में वायव्य कोण, गज में उत्तर और ध्वांक्ष में ईशान कोण में चोरी की चीज की गई है, ऐसा कहना ॥ १२-१३ ॥

नष्ट वस्तु का स्थान ज्ञान—

ऊषरे च ध्वजे नष्टं धूम्रे चाऽग्निगृहे तथा ।
गतं सिंहे तथाऽरण्ये श्वाने स्वान्यतरे गृहे ॥१४॥

ध्वज आय हो तो ऊसर में, धूम्र हो तो अग्निगृह में, सिंह हो तो वन में और श्वान तथा अन्य आय हो तो घर में नष्ट वस्तु है, ऐसा कहना ॥ १४ ॥

प्रवासी कुशल प्रश्न—

ध्वजे सिंहे वृषे चैव कुञ्जरे कुशलं भवेत् ।
ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे नास्तीति कुशलं वदेत् ॥१५॥

ध्वज, सिंह, वृष, गज आय से प्रवासी कुशल है, ध्वांक्ष, श्वान, खर, धूम्र से कुशल नहीं है, ऐसा समझना ॥ १५ ॥

प्रवासी चर स्थिर प्रश्न —

ध्वजे गजे स्थिरश्चैव श्वाने सिंहे च चञ्चलः ।
वृषे धूम्रे प्रयाणस्थः खरे ध्वांक्षे च कष्टकम् ॥१६॥

ध्वज, गज आय हो तो परदेशी स्थिर है, श्वान, सिंह हो तो कहीं अन्यत्र चला गया है, वृष धूम्र हो तो चलने की तैयारी कर रहा है, खर, ध्वांक्ष हो तो परदेशी कष्ट में है, ऐसा कहना ॥ १६ ॥

पथिक या शत्रु की सेना कितने दूर पर है ? इस प्रकार के प्रश्न—

ध्वजे धूम्रे समीपस्थो दूरस्थो गज-सिंहयोः ।
वृषे खरेऽर्धमार्गस्थो ध्वांक्षे श्वाने पुनर्गतः ॥१७॥

ध्वज, धूम्र आय हो तो नजदीक में गज, सिंह तो अभी दूर में है, वृष, खर हो तो आधा मार्ग में है, ध्वांक्ष, श्वान हो तो मार्ग से लौट गया, ऐसा समझना ॥ १७ ॥

कार्यावधि प्रश्न—

ध्वजे पक्षमिति प्रोक्तं धूम्रे सप्तदिनं तथा ।
एकविंशश्च सिंहे च श्वाने मासं तथैव च ॥१८॥
वृषे तु सार्द्धमासं च खरे मासद्वयं तथा ।
गजे मासत्रयं प्रोक्यं ध्वांक्षे ह्ययनसम्मितम् ॥१९॥

ध्वज में १ पक्ष, धूम्र में ७ दिन, सिंह में २१ दिन, श्वान में १ मास, वृष में १॥ मास, खर में २ मास, गज में ३ मास और ध्वांक्ष में ६ मास समय कहना ॥ १८-१९ ॥

धातु-जीव मूल चिन्ता प्रश्न—

ध्वजे धूम्रे धातु-चिन्तागजेसिंहे चमूलकम् च ।
श्वाने खरे वृषे ध्वांक्षे जीवच्चिन्ता वदेत् बुधः ॥२०॥

ध्वज, धूम्र, हो तो धातु, गज, सिंह हो तो मूल, श्वान, खर, वृष और ध्वांक्ष आय हो तो जीव सम्बन्धी चिन्ता समझना ॥ २० ॥

धातु के भेद—

ध्वजे सुवर्णकं ज्ञेयं धूम्रे रौप्यं तथैव च ।
सिंहे ताम्रं च विज्ञेयं श्वाने लोहं तथैव च ॥२१॥

वृषे कांस्यं खरे नागं कथितं सीसकं गजे ।
ध्वांक्षे पित्तलकं ज्ञेयं कथितं गणकोत्तमैः ॥२२॥

ध्वज में सुवर्ण, धूम्र में चाँदी, सिंह में ताम्र, श्वान में लोह, वृष में काँसा खर में राँगा, गज में सीसा, ध्वांक्ष में पीतल समझना ॥२१–२२॥

भूषणों के भेद —

ध्वजे आभूषणं मूर्ध्नि धूमे तु मुखभूषणम् ।
कण्ठस्याऽऽभूषणं सिंहे श्वाने च कर्णयोरिदम् ॥२३॥
वृषे हस्तभवं ज्ञेयं अंगुलीभूषणं खरे ।
गजे तु कटिसूत्रं स्यात् ध्वांक्षे पादादिकं तथा ॥२४॥

ध्वज में मस्तक के भूषण, धूम्र में मुख के, सिंह में कण्ठ के, श्वान में कान के, वृष में हाथ के, खर में अँगुली के, गज में कमर के और ध्वांक्ष में पैर के भूषण कहना चाहिये ॥२३–२४॥

मुष्टिगत प्रश्न में वस्तु के वर्णज्ञान —

कुसुम्भश्च ध्वजे ज्ञेयं धूम्रे श्वेतं तथैव च ।
लोहिताङ्ग भवेत् सिंहे श्वाने पाण्डुरनीलकम् ॥२५॥
पीतवर्णो वृषे ज्ञेयः खरे च मिश्रवर्णकः ।
गजे च श्यामवर्णश्च ध्वांक्षे च मिश्रवर्णकम् ॥२६॥

ध्वज में कसूमी सदृश, धूम्र मे श्वेत, सिंह में रक्त, श्वान में पाण्डु और कृष्ण वर्ण, वृष में पीत वर्ण, खर में मिश्र वर्ण, गज में श्याम वर्ण तथा ध्वांक्ष में भी मिश्र वर्ण समझना ॥२५–२६॥

वस्तु का ज्ञान —

ध्वजे पत्रं च विज्ञेयं धूम्रे पुष्पं प्रकीर्तितम् ।
सिंहे फलं च विज्ञेयं श्वाने काष्ठादिकं तथा ॥२७॥
वृषे धान्यं तथा प्रोक्तं खरे तृणं निगद्यते ।

गजे बीजं च विज्ञेयं तुषं ध्वांक्षे तथा स्मृतम् ॥२८॥

ध्वज में पत्र धूम्र में पुष्प, सिंह में फल, श्वान में लकड़ी, वृष में अन्न, खर में तृण, गज में बीज, ध्वांक्ष में भूसा समझना ॥ २७-२८ ॥

कन्या पुत्र जन्मप्रश्न—

ध्वजे वृषे गजे सिंहे गुर्विण्याः पुत्रमादिशेत् ।
धूम्रे श्वानेखरे ध्वांक्षे कन्याजन्म विनिर्दिशेत् ॥२९॥

ध्वज, वृष, गज और सिंह आय हो तो पुत्र, तथा धूम्र, स्वान, खर और ध्वांक्ष में कन्या का जन्म कहना ॥ २६ ॥

आयुर्दाय वर्षप्रमाण प्रश्न—

ध्वजे सिंहे शतं प्रोक्तं गजे व्योमगजस्तथा ।
वृषे च षष्टिवर्षाणि खरे व्योमाऽब्धिसंज्ञकम् ॥३०॥
श्वाने च विंशतिः प्रोक्ता ध्वांक्षेच षोडशस्तथा ।
धूम्रे वर्षमिति ज्ञेयमित्थायुश्च विचिन्तयेत् ॥३१॥

ध्वज, सिंहआयमें १००वर्ष, गज में ८० वर्ष, वृष मे ६० वर्ष खर में ४०, श्वान में २०, ध्वांक्षमें १६ और धूम्रमें १ वर्ष आयु कहना चहिए ॥३०-३१॥

जयपराजय प्रश्न—

ध्वजे गजे वृषे सिंहे स्थायिनो जयमाप्नुयात् ।
धूम्रे श्वाने खरे ध्वांक्षे यायिनो जयमादिशेत् ॥३२॥

ध्वज, गज, वृष सिंह आय हो तो स्थायी (मुद्दालह) की जय और धूम्र, श्वान, खर, ध्वांक्ष हो तो यायी (मुद्दई =पहिले चढ़ाई मुकदमा आदि करने वाला) की जय होगी, ऐसा कहना ॥ ३१ ॥

जनश्रुति सत्य है, या मिथ्या ? इस प्रश्न में—

उपश्रुतिः स्याद्भवतीति सत्या ध्वजे गजे सिंहे-वृषे तु प्रश्ने

श्वाने खरे ध्वांक्षकधूमएवमुपश्रुतिः स्याद्भवतीतिमिथ्या ॥३३॥

प्रश्न के आदि अक्षर से ध्वज गज, सिंह या वृष आय हो तो खबर सत्य है, स्वान, ध्वांक्ष, धूम्र, हो तो मिथ्या समझना ॥ ३३ ॥

वर्षा प्रश्न-

धूम्रे गजे वृषे श्वाने वृष्टिर्भवति चोत्तमा ।
ध्वजे सिंहे विलम्बश्च खरे ध्वांक्षे न वर्षणम् ॥३४॥

धूम्र, गज, वृष, श्वान आय हो तो उत्तम वृष्टि, ध्वज, सिंह में विलम्ब से वृष्टि, खर, ध्वांक्ष में वर्षा नहीं होगी, ऐसा कहना ॥ ३४ ॥

कितने दिन में वर्षा होगी ? इस प्रश्न में—

धमू सप्त-दिनं प्रोक्तं वृषे दिग्भिस्तथैव च ।
श्वाने च विंशतिर्ज्ञेया गजे च सप्तविंशति ॥३५॥
सिंहेध्वजेचव्योमाऽब्धिःखरेध्वांक्षेऋतुस्तथा ।
वर्षाकाले क्रमो ह्येष कथितो गणकोत्तमैः ॥३६॥

धूम्र में सात दिन, वृष में १० दिन, श्वान में २० दिन, गज में २७ दिन सिंह और ध्वज में ४० दिन, खर और ध्वांक्ष में ६० दिन में वर्षा होगी. ईस प्रकार वर्षा समय (आषाढ़ से अस्विन तक) के प्रश्न में कहना चाहिए ॥ ३५- ६ ॥

स्त्रीलाभ प्रश्न—

ध्वजे चसिंहेचवृषेचलाभः स्त्रियं सुरूपां लभते सुशीलाम् ।
श्वाने गजे ध्वांक्ष-खरेचधूम्रे कार्यस्य हानिः कलहस्तथैव ॥३७॥

ध्वज, सिंह, वृष आय हो तो सुशीला और सुन्दरी स्त्री का लाभ तथा श्वान, गज, ध्वांक्ष, खर आय हो तो हानि और कलह हो ॥ ३७ ॥

व्यवहार प्रश्न—

ध्वजे गजे वृषे सिंहे व्यवहारः शुभावहः ।
ध्वांक्षे श्वाने खरे धूम्रे कलहाऽऽद्यशुभप्रदः ॥३८॥

ध्वज, गज, वृष, सिंह आय में उत्तम और ध्वांक्ष, श्वान, खर, धूम्र आय में कलह-प्रद व्यवहार कहना चाहिए ॥ ३८ ॥

राज्यप्राप्ति प्रश्न—

गजे ध्वजे चिरात् प्राप्तिर्वृषे सिंहे च शीघ्रता ।
श्वाने खरे न च प्राप्तिः शत्रुर्गृह्णाति शेषयोः ॥३९॥

ध्वज, गज आय हो तो विलम्ब से, वृष, सिंह हो तो शीघ्र राज्य प्राप्ति तथा श्वान, खर आय हो तो राज्यप्रप्ति नहीं होगी । और शेष (धूम्र, ध्वांक्ष) आय हो तो राज्यप्राप्ति होगी, परञ्च फिर भी शत्रु छीन लेगा, ऐसा कहना ॥ ३९ ॥

नौका (जहाज) का कुशल प्रश्न—

ध्वज-कुञ्जर-सिंहेषु वृषे च कुशलान्विता ।
ध्वांक्षे धूम्रे खरे श्वाने ध्रुवं नौका निमज्जति ॥४०॥

ध्वज, गज, सिंह, वृष, आय हो तो नौका कुशल सहित आती है, यदि ध्वांक्ष, धूम्र, श्वान खर आय हो तो नौका डूब गई या डूब जायेगी ॥ ४० ॥

किसी अधिकार की प्राप्ति के प्रश्न—

ध्वजे गजे चिरात् प्राप्तिर्वृषे सिंहे च सत्वरम् ।
कलहश्च खरे श्वाने नास्ति च ध्वांक्ष-धूम्रयोः ॥४१॥

ध्वज, गज, आय हो तो विलम्ब से वृष, सिंह हो तो शीघ्र प्राप्ति होगी, तथा खर, श्वान में कलह से प्राप्ति और ध्वांक्ष, धूम्र में प्राप्ति नहीं होगी, ऐसा कहना ॥ ४१ ॥

कार्य की सिद्धि-असिद्धि प्रश्न में—

ध्वजे गजे चिरात् कार्यं त्वरितं वृष-सिंहयोः ।
दीर्घकाले खरे श्वाने ध्वांक्षे धूम्रे न सिद्धयति ॥४२॥

ध्वज, गज, आय में विलम्बन से, वृष, सिंह में शीघ्र, खर, श्वान में अत्यन्त विलम्ब से कार्य सिद्धि तथा ध्वांक्ष, धूम्र में कार्य की सिद्धि नहीं कहना ॥४२॥

जेल से छूटने के प्रश्न में—

धूम्रे श्वाने खरे ध्वांक्षे बन्दी शीघ्रं समुच्यते ।
ध्वांक्षे गजे वृषे सिंहे बन्दिकष्टं समादिशेत् ॥४३॥

धूम्र, श्वान, खर, ध्वांक्ष आय हो तो शीघ्र छूटेगा, ध्वज, गज, वृष, सिंह आय हो तो बन्दी को अभी कष्ट है, नहीं छूटेगा ॥ ४३ ॥

कार्य सिद्धि के लिये अनुष्ठान—

ध्वजे भैरवपूजा स्याद् धूम्रे च जगदम्बिकाम् ।
सिंहे च पूजयेत् सूर्यं श्वाने वायुसुतं तथा ॥४४॥
वृषे शिवार्चनं चैव खरे वागीश्वरीं तथा ।
गणेशं गजराजाख्ये ध्वांक्षे च पितृपूजनम् ॥४५॥

कौन सा अनुष्ठान करने से कार्य सिद्धि होगी ? इस प्रकार के प्रश्न में यदि ध्वज आय हो तो भैरव जी की, धूम्र हो तो दुर्गा की, सिंह हो तो सूर्य की, श्वान हो तो हनुमान् की, वृष हो तो शंकर की, खर हो तो सरस्वती की, गज हो तो गणेशजी की और ध्वांक्ष हो तो पितरों की पूजा करने से कार्य सिद्धि होती है ॥ ४४-४५ ॥

कार्य-सिद्धि के लिए क्या दान करना चाहिये ? ऐसे प्रश्न में—

गोधूमान्नं ध्वजे दद्याद् धूम्रे चैव तिलांस्तथा ।
पीतवस्त्रं च सिंहे वै श्वाने च बलिविस्तरम् ॥४६॥

वृषे च तन्दुलाः प्रोक्ताः खरे चणकधान्यकम् ।
गजे गुडं तथा दद्याद् ध्वांक्षे च यवधान्यकम् ॥४७॥

ध्वज आय हो तो गेहूँ, धूम हो तो तिल, सिंह हो तो पीत वस्त्र श्वान, हो तो भात आदि की बलि, वृष हो तो चावल, खर हो तो चना, गज हो तो गुड़ और ध्वांक्ष हो तो जौ, मान-दान करने से कार्य सिद्धि होती है ॥४६-४७॥

कितने समय में कार्य होगा ? इस प्रकार के प्रश्न में—

ध्वजे सप्त-दिनं प्रोक्तं सिंहे पक्षं तथैव च ।
वृषे मासश्च विज्ञेयो गजे मासत्रयं तथा ॥४८॥
श्वाने खरे च षण्मासं धूम्रे ध्वांक्षे च वर्षकम् ।
इति कालं वदेत् प्रश्ने सर्वकार्येषु चिन्तयेत् ॥४९॥

ध्वज हो तो ७ दिन, सिंह में १५ दिन, वृष हो तो १ मास, गज हो तो ३ मास, श्वान और खर हो तो ६ मास, धूम्र, ध्वांक्ष हो तो १ वर्ष में कार्य सिद्धि होगी। सब प्रश्नों में इससे काल का निर्णय समझना चाहिए ॥४८–३९॥

इति केरलप्रश्नसंग्रहे आयफलाध्यायः ।

—●—

अथाऽङ्गविद्या

अङ्गविद्यां प्रवक्ष्यामि नारदेन स्वयंकृताम् ।
ययाऽङ्गस्पर्शमात्रेण बुधैर्ज्ञेयं शुभाऽशुभम् ॥५०॥

अब नारदोक्त अङ्गविद्या को कहता हूँ, जिसके द्वारा प्रश्नकर्त्ता के अङ्गादि स्पर्श करने पर ही उसके शुभ अशुभ फल पण्डित समझ कर कह सकते हैं ॥५०॥

स्पृश्यमानः शिरः पृच्छेन्महालाभो भविष्यति ।
हिरण्यधनधान्यस्य वाञ्छितस्याऽस्य निश्चितम् ॥५१॥

यदि मस्तक स्पर्श करके पूछे तो सुवर्ण, धन, धान्य आदि वाञ्छित पदार्थों का अधिक लाभ होगा, ऐसा कहना ॥५१॥

मुखं च नासिकां चैव चक्षुः श्रवणमेव च ।
स्पृश्यमानो यदा पृच्छेत्तदा लाभं विनिर्दिशेत् ॥५२॥

मुख, नाक, आँख और कान का स्पर्श करता हुआ पूछे तो भी अभीष्ट वस्तुओं का लाभ कहना ॥५२॥

ग्रीवां स्कन्धं तथा कण्ठं बाहुं चैव तथा स्पृशेत् ।
पृच्छति पृच्छको यस्य तस्य लाभोऽल्प एव च ॥५३॥

गला, कन्धा, कण्ठ, बाहु का स्पर्श करके पूछे तो इच्छा से कुछ कम लाभ होगा, ऐसा कहना ॥ ५३ ॥

उदरं नाभिमूलं वा स्पृष्ट्वा यः पृच्छति स्वयम् ।
अन्नपानं भवेत्तस्य कृषिकर्मेति सिद्ध्यति ॥५४॥

पेट अथवा नाभि का स्पर्श कर पूछे तो उसको उत्तम भोजन मिलेगा और खेती का कार्य सिद्ध होगा, ऐसा कहना ॥ ५४ ॥

कटिं शिश्नं तथोरूं च पृच्छको यदि संस्पृशेत् ।
कन्यालाभो भवेत्तस्य पुत्रसम्पत्तिरेव च ॥५५॥

कमर, लिङ्ग, जाँघ का स्पर्श करके पूछे तो कन्या और पुत्र को सुख मिलेगा, ऐसा कहना ॥ ५५ ॥

जानुजङ्घे तथा गुल्फौ पादौ च संस्पृशेत् ।
पृच्छकस्य भवेन्मृत्युः क्लेशो वाऽपि न संशयः ॥५६॥

यदि ठेहुन से नीचे पैर का स्पर्श करके पूछे तो प्रश्नकर्ता का मरण अथवा क्लेश कहना ॥ ५६ ॥

फलं पुष्पं नवं वस्त्रं गृहीत्वा यदि पृच्छति ।
सर्वं च पृच्छतस्तस्य जायते सफलोदयम् ॥५७॥

फल, फूल वा नवीन वस्त्र ग्रहण करके पूछे तो मनोरथ सफल होगा, ऐसा कहना ॥ ५७ ॥

अङ्गारकास्तृणादींश्च गृहीत्वा यदि पृच्छति ।
न तस्य जायते सिद्धिः कार्यस्य प्रयतोऽपि हि ॥५८॥

यदि कोयला, तृण आदि ग्रहण करके पूछे तो यत्न से भी कार्य सिद्धि नहीं होगी, ऐसा कहना ॥५८॥

शस्त्रं काष्ठं तथा गन्धं गृहीत्वा यदि पृच्छति ।
क्षोभस्तस्य भवेन्नित्यं ग्रहदोषश्च जायते ॥५९॥

यदि शस्त्र, काठ वा गन्ध युक्त वस्तु (चन्दनादि) ग्रहण करके पूछे तो क्षोभ और ग्रहदोष से कष्ट कहना ॥५९

हिरण्यं रत्नभाण्डं च गृहीत्वा चाऽन्नपानकम् ।
पृच्छक सिद्धिमाप्नोतिः सद्य एव न संशयः ॥६०॥

सुवर्ण, रत्न अन्न, जल लेकर पूछे तो निश्चय उसका मनोरथ सिद्ध होता है ॥६०॥

आरामस्य स्पृशन्भूमिं यदा पृच्छति पृच्छकः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥६१॥

यदि बगीचे की भूमि का स्पर्श करके पूछे तो उसे सब कार्यों की सिद्धि होती है ॥६१॥

देवगेहे नदीतीरे स्थाने चैव मनोरमे ।
उपविश्यं यचा पृच्छेत्तदा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥६२॥

देव मन्दिर, नदी तीर या सुन्दर स्थान में बैठकर पूछे तो भी कार्यों की सिद्धि होती है ॥६२॥

शुष्ककाष्ठे क्षते दुष्टे गुल्मे भग्ने तथैव च ।
स्थानेष्वेतेषु यः पृच्छेत्तस्य क्लेशं समादिशेत् ॥६३॥

सूखे काठ पर बैठ कर अथवा खडहर आदि खराब स्थान मे बैठ कर पूछे तो प्रश्नकर्ता को क्लेश कहना ॥६३॥

सुखोपविष्टे दिक्स्थे च पृच्छके सिद्धिरङ्कुता ।
विदिक्स्थिते दुरासीने कार्यसिद्धिर्न जायते ॥६४॥

सुखपूर्वक, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर दिशा में बैठ कर पूछे तो कार्य की सिद्धि, यदि दुष्ट आसन पर बैठ कर या विदिक् (कोण की दिशा) में मुख कर पूछे तो कार्य सिद्धि नहीं होती है ॥६४॥

पुनः रुद्दोप में अङ्ग स्पर्श से फल

अङ्गुष्ठ-कर्ण-वदन-स्तन-केश-
कट्यंस-पादतल-गुह्य-शिरांसि गण्डम् ।
ओष्ठं च संस्पृशति वक्ति शुभानि यद्वा
प्रष्टा तदा कलयति ध्रुवमिष्टसिद्धिम् ॥६५॥

अँगूठा, कान, मुख, हृदय, हाथ, केश, कमर, कंधा, पदतल, गुदा, मस्तक, गाल या ओठ का स्पर्श करके पूछे तो शुभफल और इष्ट सिद्धि होती है ॥६५॥

मतान्तर से—

स्पृशेच्छिरो वक्त्र-विलोचन-श्रुतिं
प्राप्नोति धान्या-ऽम्बर-हेमपूर्वकम् ।

ग्रीवा-हनु-स्कन्धयुगं यदा नरो
दुःखाच्चदा तस्य विलम्बमादिशेत् ॥६६॥

मस्तक, मुख, नेत्र, कान का स्पर्श करके पूछे तो अन्न, वस्त्र, सोना की प्राप्ति हो। यदि गला, दाढ़ी, कन्धा स्पर्श करके पूछे तो यत्न से लाभ कहना ॥६६॥

नाभिं सकुक्षिं स्पृशतोऽर्थसिद्धिं
गुल्फाङ्घ्रिजानुस्पृशतोऽतिदुःखम् ।
जङ्घां कटिं लिङ्गमिह स्पृशेद्यो
कन्यां लभेत सुलभां सुयोगात् ॥६७॥

पेट, नाभि के स्पर्श से कार्य सिद्ध, गुल्फ पैर, ठेहुन का स्पर्श करे तो कष्ट, जाँघ, कमर, लिङ्ग के स्पर्श करके पूछे तो कन्या की प्राप्ति कहना ॥६७॥

कचस्पृगेति प्रभुतां फलादि
स्पृष्टं शुभं वै तृण-वह्निशेषम् ।
न सिद्धिवान् कर्दम-काष्ठ-वस्त्र—
स्पृक् खेटपीडां लभते तथाऽऽधिम् ॥६८॥

केश स्पर्श करके पूछे तो प्रभुत्व की प्राप्ति, फल, फूल आदि का स्पर्श करके पूछे तो शुभ, तृण, कोयला के स्पर्श से कार्य-सिद्ध नहीं, और कीचड़, काठ, वस्त्र स्पर्श करके पूछे तो ग्रह पीड़ा और चिन्ता होती है ॥६८॥

प्रश्न के प्रथम अक्षर से लग्न जानकर शुभाशुभ फल—

रविः कुजो भृगुर्ज्ञेज्याः शनीन्दू वर्गपाः क्रमात् ।
लग्नं तत्र कुजादीनामोजे चौजं समे समम् ॥६९॥
तल्लग्नाद् गृहयोगैश्च वक्ष्यमाणैः फलं दिशेत् ।
प्रश्नोच्चारितवर्णेभ्यो लग्नांशांस्त कल्पयेत् ॥७०॥

रवि, मङ्गल, शुक्र, बुध, गुरु, शनि और चन्द्र ये क्रम से अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग और यवर्ग के स्वामी हैं। प्रश्न के प्रथम अक्षर यदि मङ्गलादि ग्रह के वर्ग में हो तो विषम अक्षर से विषम राशि, और सम अक्षर से सम राशि लग्न समझना। उस लग्न के योग से आगे कहे फल को कहना चाहिये। प्रश्नकर्ता के मुख से जो प्रथम अक्षर, निकले उसी से लग्न समझना॥ ६९–७०॥

उदाहरण—प्रश्नकर्ता के मुख से प्रथम अक्षर 'ग' निकला तो गवर्ग होने के कारण मङ्गल वर्गेश हुआ, इसलिये लग्नेश मङ्गल हुआ। मङ्गल की २ राशि (मेष और वृश्चिक) है, उसमें प्रश्नाक्षर विषम (तीसरा) है इस लिये विषम राशि 'मेश' लग्न हुआ।

स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रह	रवि	मङ्गल	शुक्र	बुध	गुरु	शनि	चन्द्र
वर्ग	अ ऋ आ ॠ इ ऌ ई ॡ उ ए ऊ ऐ ओ औ	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ	ट ठ ड ढ ण	त थ द ध न	प फ ब भ म	य ष र स ल ह व श
राशि	५ सिंह	१ मेष ८ वृश्चि	२ वृष ७ तुला	३ मिथु ६ कन्या	९ धनु १२ मीं.	१० म. ११ कुं.	४ कर्क

स्पष्टार्थ श्लोक—

अवर्गे सिंहलग्नं च कवर्गे मेष-वृश्चिकौ।
चवर्गे यूक-वृषभौ टवर्गे युग्म-कन्यके॥७१॥

तवर्गे चाप-मीनौ च पवर्गे कुम्भ-नक्रकौ।
यशवर्गे कर्कटश्चैव लग्नं शब्दाक्षरैर्वदेत् ॥७२॥

अर्थ स्पष्ट है ऊपर चक्र देखो॥ ७१--७२॥

इस प्रकार लग्न ज्ञान करके उससे फल—

लग्ने चरे न हृतलाभऋणः पदार्थ-
नाशो गदक्षयगमाऽऽगमबन्धमोक्षाः।
शत्रुर्भवन्ति परचक्रमुपैति शीघ्रं।
कल्याण-वृद्धि-कलहोपशमा भवन्ति ॥७३॥

यदि चर लग्न हो तो नष्ट वस्तु का लाभ नहीं हो, ऋण के प्रश्न में ऋण नहीं मिले, स्थान प्राप्ति नहीं हो, धन लाभ नहीं हो, रोग के प्रश्न में रोग का नाश हो, गमन वा आगमन हो, बन्दी मोक्ष प्रश्न में बन्दी छुटे, शत्रु की सेना आवे, कुशल प्रश्न में कुशल हो, कलह प्रश्न में कलह शान्त हो, ऐसा कहना ॥७३॥

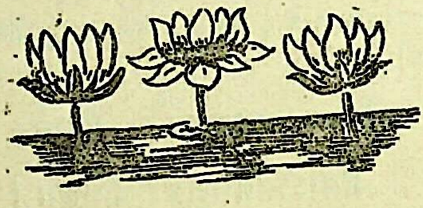
लग्ने स्थिरे न मृतनष्टभयौ पदार्थ-
लाभो गमाऽऽगमगक्षयबन्धमोक्षाः।
न स्युस्तथैव परचक्रमथोऽर्थनाशः
कल्याण-वृद्धि-कलहोपशमा भवन्ति ॥७४॥

स्थिर लग्न में मृत प्रश्न हो तो मरण नहीं हो, एवं नष्ट लाभ नहीं, स्थान और धन की प्राप्ति नहीं, जाना-आना नहीं, रोग नाश नहीं, बन्धन से मुक्ति नहीं, होगी ऐसा कहना। तथा शत्रु की सेना आवेगी या नहीं इस प्रश्न में-शत्रु की सेना नहीं आवेगी, अर्थ की हानि, नहीं होगी, कल्याण की वृद्धि नहीं होगी, कलह प्रश्न हो तो कलह शान्ति नहीं होगी ऐसा कहना ॥७४॥

द्व्यङ्गोदये हृतजनाप्तिरभीष्टवस्तु-
प्राप्तिश्चिरेण गमना-ऽऽगम-बन्ध-मोक्षाः ।
प्रष्टुर्भवन्ति परचक्रमुपैत्त शीघ्रं
रोगी च जीवति कलिः शमते तु भूयः ॥७५॥

द्विस्वभाव लग्न में नष्ट वस्तु तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति विलम्ब से हो, गमन-आगमन, बन्धन से छूटना भी विलम्ब से कहना चाहिये। परश्न शत्रु सेना आगकन प्रश्न हो तो शीघ्र आवेगी, रोगी का रोग शीघ्र छूटेग कलह शीघ्र शान्त होगा, ऐसा कहना ॥७५॥

इति केरल-प्रश्नसंग्रहे उत्तरार्धम् ॥ शुभम् ॥



पुस्तक-प्राप्ति-स्थानम्

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय,

कचौड़ीगली, वाराणसी-१

[फोन : ६३०१५]

पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

कचौड़ीगली :: वाराणसी-१